खोजबीन

अंक : 4

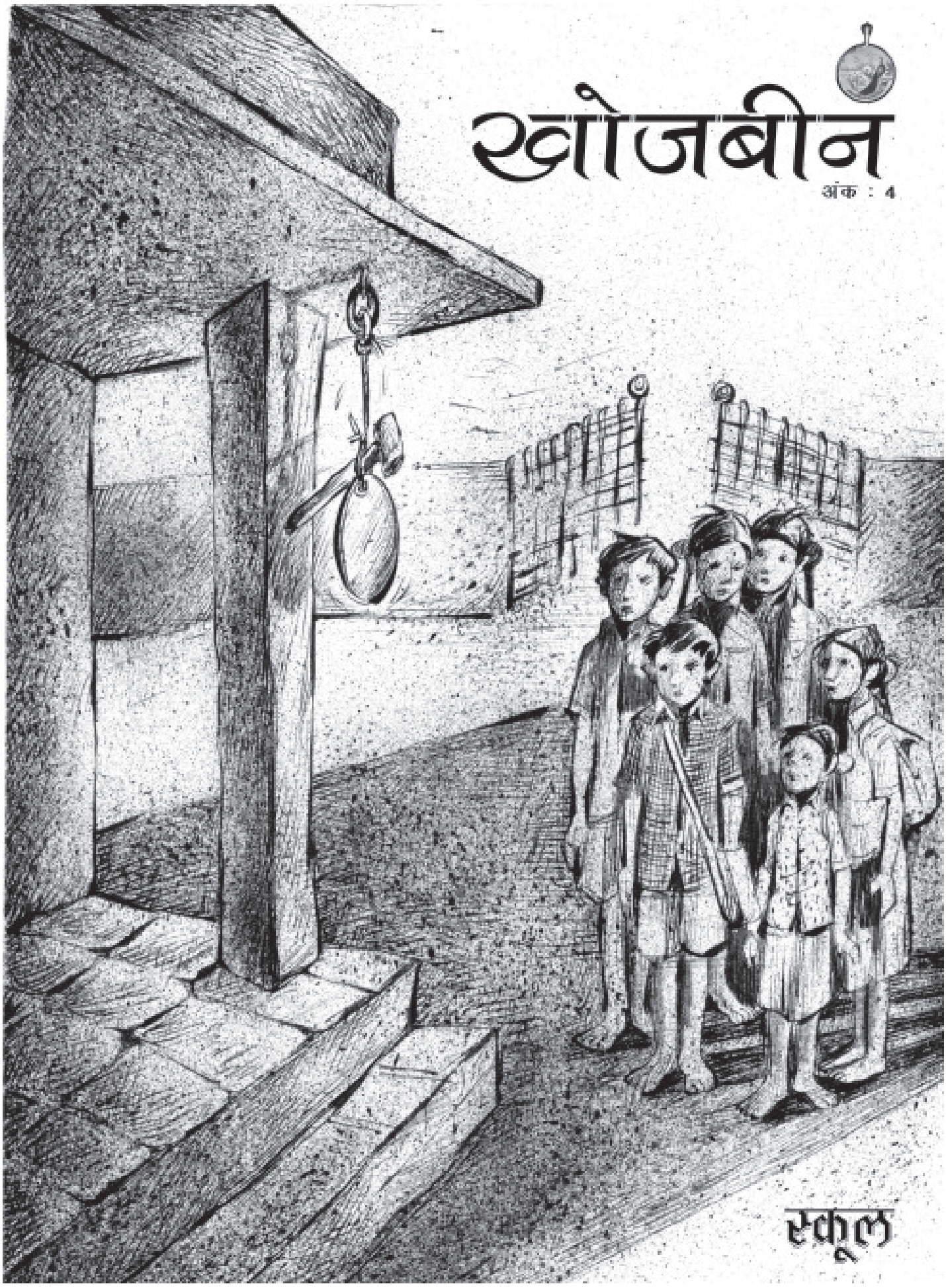

स्कूल

इस अंक में

खोजबीन
अंक–4

आप खुद तय कीजिए–1
स्कूलों में खराब उपलब्धि स्तर–2
साधना सक्सेना
एक दास्तान सिंगल टीचर स्कूल की–4
गोविंद सिंह गहलोत
क्या कहते हैं शिक्षक?–6
पढ़ाई पर हावी पिटाई–8
कुमार अनुपम
स्कूल की मार–10
के.आर.शर्मा
क्या सोचते हैं बच्चे?–13
घर और स्कूल में अंतर–14
रेशमा भारती
आदरणीय गुरुजी–16
मैं हूं स्कूल, मेरा दर्द न जाने कोई–18
रमेश दवे
स्कूल क्यों?–20
ए.बी. फाटक
स्कूल बनाम लर्न टू...–21
एम.पी. शर्मा
एक जतन यह भी–22
डी.एस. पालीवाल
स्कूल कैसे कैसे?–24
वि.वि. सिंह
मोबाइल लायब्रेरी–26
यशपाल सिंह

''शिक्षक ने मुझसे कहा कि एक शिक्षक वाली सभी स्कूल ऐसे ही चल रही हैं। आप जाकर देखना। अब मुझे 'डाक' के काम से जाना है, आप इनके साथ कुछ खेल, कविता करो। मैं तो जा रहा हूं। अब कल मिलेंगे।''

''वह थोड़ा सोचती है, और कहती है, ''हां, क्लास के बाहर मैदान में कुत्ते के छोटे–छोटे बच्चे घूमते रहते हैं, वे बड़े अच्छे लगते हैं? पर टीचर तो खिड़की में से बाहर देखने भी नहीं देती!''

जहां शिक्षक बच्चों के साथ खेलते हैं–27
गिरीश शर्मा
विज्ञान में प्रयोग : एक दिलचस्प अनुभव–29
यशोधरा कनेरिया
बुनियादी शिक्षा : संपूर्ण शिक्षा–31
बच्चों का बाग नीलबाग–32
अरविंद गुप्ता
प्राथमिक विद्यालय क्या है?–33
सीखने–सिखाने का ज़रिया–35
ज्योति चौरड़िया
खिड़की में खड़ी लड़की–37
समरहिल–40
स्कूल : क्या कहते हैं आंकड़ें–41
जानवरों का स्कूल–44

''हमारे स्कूलों की सबसे बड़ी समस्या यह है कि सारी शिक्षा केवल पाठ्यपुस्तकों पर निर्भर हो गई है। वास्तव में पाठ्यपुस्तक शिक्षकों और बच्चों की सहायता के लिए हैं। पाठ्यपुस्तकें शिक्षा में सहायक हो सकती है लेकिन पाठ्यपुस्तकें कभी भी मुख्य भूमिका नहीं निभा सकती।''

सभी चित्रों के छायाकार : d:vkj- 'kek

ijke'k ,o i:c/k	संपादक	संपादन सहयोग	चित्रांकन	ले–आउट
हृदय कांत दीवान	के.आर. शर्मा	गिरीश शर्मा कुमार अनुपम	प्रशांत सोनी	इसरार अहमद

रचनाएं भेजने और पत्र–व्यवहार के लिए संपर्क करें
fo|k Hkou f'k{kk lnHk' d:n] फतहपुरा, उदयपुर (राज.)
email : vbsudr@yahoo.com, फोन : 0294–2451497

सौजन्य : आईसीआईसीआई (सेंटर फॉर एलिमेंट्री एज्यूकेशन) के वित्तीय सहयोग से।

संपादकीय

आप खुद ही तय कीजिए...

खोजबीन के इस अंक को जब हमने स्कूल पर केन्द्रित करने की योजना बनाई तो काफी सारे सवाल हमारे ज़ेहन में उभरने लगे। स्कूलों के बारे में कहां से शुरू करें और कहां खत्म? हमारे देश की बात करें तो यहां तरह–तरह के स्कूल देखे जा सकते हैं। ऐसे स्कूल जहां आमजन के बच्चे पढ़ते हैं जिनको हम सरकारी स्कूल कह सकते हैं। ऐसे स्कूल जहां विशिष्ट वर्ग के बच्चे पढ़ते हैं जहां केन्द्रिय वातानुकूलन पूरे वातावरण को अतिसुविधाजनक बनाए हैं। और न जाने कितने ही स्कूल इन श्रेणियों के बीच असंख्य संख्या में बिखरे पड़े हैं।

हर मां–बाप की तमन्ना यही होती है कि वे अपने बच्चे को अच्छे स्कूल में भर्ती करें। सवाल यह भी है कि हम अच्छा स्कूल किसे कहें? सुबह–सुबह आंखें मलते बच्चे जब यूनिफार्म लगाए, पीठ पर भारी भरकम बस्ता लटकाए स्कूल की ओर जा रहे होते हैं तो उनके चेहरे पर निराशा के भाव होते हैं। बच्चे रोते हुए घर से जाते हैं और स्कूल का आतंक लेकर लौटते हैं। दूसरी तरफ हम देखते हैं कि स्कूल की उम्र के आधे से ज्यादा बच्चे स्कूल की देहलीज़ पर पैर भी नहीं रख पाते। ऐसे बच्चों को शिक्षा की मुख्यधारा में लाने के लिए तरह–तरह के प्रयास किए जा रहे हैं। आज़ादी के बाद का दृश्य यह है कि स्कूल खुलते जा रहे हैं। स्कूल नामक संस्था को चलाने के लिए शिक्षक, भवन जैसी चीज़ों की व्यवस्था की जाती है। मगर बच्चे हैं कि स्कूल में आते नहीं। और यदि आते भी हैं तो वे बीच में ही स्कूल छोड़ देते हैं। सरकारी भाषा में ऐसे बच्चों को ड्राप आउट और लेफ्ट आउट कहते हैं। सवाल इस बात का है कि आखिर बच्चे स्कूल क्यों नहीं जाते? एक समय में यह मिथक था कि परिवारों की आर्थिक स्थिति इतनी कमज़ोर होती है कि बच्चे स्कूल नहीं आ सकते। लेकिन असल मामला तो कुछ ओर ही है। बच्चे स्कूल इसलिए नहीं आते या बीच में ही छोड़ देते हैं क्योंकि वहां उनके सीखने को कुछ खास नहीं है और स्कूल उन पर आतंक ढाते हैं।

स्कूलों के बारे में अब तक इतना कहा जा चुका है कि उसमें कुछ और जोड़ने को रह नहीं जाता। मूल सवाल जिस पर ठीक से नहीं सोचा जा रहा है वह यह कि आखिर स्कूलों की दशा को सुधारने के लिए क्या किया जाए? यह वैसी ही बात है कि स्कूल की बीमारी के लक्षणों की फेहरिस्त को लंबी किए जा रहे हैं लेकिन उस बीमारी को ठीक करने के नाम पर मौन हैं। इस दिशा में हम आगे कैसे बढ़ें, इस पर सोचने की सख्त आवश्यकता है।

खोजबीन के इस अंक में हमने ''स्कूल'' को टटोलने की कोशिश भर की है। इसके लिए अलग–अलग साथियों और स्रोतों से लेखन, रपट, अवलोकन आदि प्राप्त कर स्कूल की एक झांकी भी पेश की है। यह थोड़ा मुश्किल और जोखिमभरा काम है कि हम किसे बढ़िया स्कूल कहें और किसे बेकार? यह आप खुद ही तय कीजिए। असल में कहें तो यह हमारा मक़सद भी नहीं है। मूल मक़सद तो यह है कि स्कूलों को बच्चों के लायक बनाएं न कि बच्चों को स्कूलों के।

साधना सक्सेना

स्कूलों में खराब उपलब्धि स्तर

बहुत से मां–बाप अपने बच्चों को स्कूल इसलिए छुड़वा देते हैं क्योंकि बच्चे वहां कुछ सीखते ही नहीं। बहुत से बच्चे खुद ही स्कूल जाना छोड़ देते हैं क्योंकि वहां पढ़ाई नहीं, बल्कि पिटाई होती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाना एक प्रमुख लक्ष्य माना गया था (भारत सरकार, 1986)। इस संदर्भ में गोविंदा और वर्गीज का एक दिलचस्प अध्ययन है। यह अध्ययन उन्होंने मध्य प्रदेश के कुछ स्कूलों में पढ़ाई की गुणवत्ता जांचने के लिए किया था। इसके परिणाम काफी कुछ सोचने को मजबूर करते हैं। इस अध्ययन का उद्देश्य स्रोतों के प्रावधान, पढ़ने–सीखने की प्रक्रिया और शैक्षणिक उपलब्धियों के संदर्भ में प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता का विश्लेषण करना था। तीन पिछड़े हुए और दो तुलनात्मक रूप से बेहतर क्षेत्रों में पांच शाला संकुलों में यह अध्ययन किया गया था। अध्ययन के परिणाम दिखाते हैं कि पांच वर्षों तक स्कूलों में जाने के बाद भी इन मोहल्लों के जिन बच्चों पर परीक्षण किया गया था उनमें से सिर्फ 10 प्रतिशत बच्चे हिन्दी में और 5 प्रतिशत बच्चे गणित में बुनियादी ज्ञान और कौशल हासिल कर पाए (गोविंदा, 1993;16)।

स्कूलों का प्रसार हो जाना भर अपने आप में शिक्षा हासिल हो जाना सुनिश्चित नहीं करता। सरकारी स्कूलों का स्तर लगातार गिरता जा रहा है। इन स्कूलों की स्थिति बद से बदतर होने के साथ–साथ प्राइवेट स्कूलों की संख्या भी बढ़ती जा रही है। बड़े शहरों में उभरते हुए प्रभावशाली मध्यम वर्ग स्कूल की पढ़ाई के स्तर में सुधार के लिए दबाव बना सकते हैं, पर इन प्रभावशाली मध्यम वर्ग के अधिकांश लोग अपने बच्चों को प्राइवेट स्कूलों में भेजते हैं। यानी सरकारी स्कूलों की बदतर होती स्थिति में इन लोगों का कोई सरोकार नहीं होता। छोटे शहरों, कस्बों एवं गांवों की स्थिति और भी खराब है। वहां न पढ़ाई होती है और न ही बच्चे कुछ सीख पाते हैं। लेकिन जनरल प्रमोशन की नीति के तहत (पहली से दूसरी कक्षा में) या अपनी वेतन वृद्धि रूकने के डर से शिक्षक उन्हें उत्तीर्ण करके अगली कक्षा में भेज देते हैं। इस प्रकार आम तौर पर ग्रामीण स्कूलों में पढ़े बच्चे पांचवीं पास कर लेने के बावज़ूद सरल पुस्तकें और निर्देश पढ़कर समझने में असमर्थ होते हैं और गणित की सरल गणनाएं तक नहीं कर पाते। प्राइवेट स्कूलों के अलावा पिछले दो दशकों में एक और परिवर्तन भी आया है। सरकारी स्कूलों के शिक्षक बड़े पैमाने पर प्राइवेट ट्यूशन करते हैं यानी स्कूलों में पढ़ाई न होना और शिक्षक के घर पर अतिरिक्त पैसे देकर पढ़ाई होना एक आम बात होती जा रही है। पहले प्राइवेट ट्यूशन कमजोर बच्चों के लिए अतिरिक्त मदद के रूप में होती थी, परंतु कोचिंग क्लासेस के धंधे ने अब प्राथमिक स्तर के स्कूलों में भी प्राइवेट ट्यूशन की बीमारी फैला दी है। (ओमवेट, गेल : हिन्दु, 14.11.98)।

गांवों के स्कूलों में, खासतौर से उत्तर भारत के स्कूलों की अभावग्रस्त स्थितियों जैसे भवन न होना या जर्जर भवन, कम शिक्षक, पढ़ाने की सामग्री न के बराबर होना आदि को देखते हुए ऐसा भ्रम हो सकता है कि शायद तुलनात्मक रूप से शहरी सरकारी स्कूलों में शैक्षिक उपलब्धि का स्तर बेहतर होगा। परंतु वास्तविक स्थिति ऐसी नहीं है। कुछ अध्ययनों से पता चला है कि कई जगहों पर तो शहरी बच्चों की उपलब्धि का स्तर और भी खराब है जो काफी आश्चर्यजनक बात है (गोविंदा, 1995; 33)। भारत जैसे विशाल, गैरबराबरी, अन्याय

और विविधताओं वाले देश में शिक्षा के द्वारा समरूपीकरण के या एकरूपता (होमोजिनाइज़ेशन) लाने के प्रयास सफल हुए या नहीं, यह तो विवादास्पद विषय है, परंतु आर्थिक विकास के लिए न्यूनतम दक्षता तो हासिल नहीं हुई है। विश्व बैंक की हाल की एक रपट, प्राथमिक शिक्षा की उपलब्धियां और चुनौतियां (प्राइमरी एजूकेशन : एचीवमेंट्स एंड चैलेंजेस, 1996) के अनुसार ''भारत में शैक्षणिक उपलब्धि का स्तर बहुत निम्न है। बच्चे जो प्राथमिक शिक्षा के अंतिम वर्ष तक पहुंच पाते हैं वे भी आमतौर पर आधे से भी कम पाठ्यक्रम पर प्रवीणता हासिल कर पाते हैं'' (सिटिजंस रिपोर्ट, 1972, 2)। स्कूलों की इस प्रभावहीनता और सालों स्कूल जाने के बाद भी पढ़ना–लिखना व सीख पाने का जो असर बच्चों पर हो सकता है उसकी ओर ध्यान बहुत कम दिया जाता है।

बहुत से मां–बाप अपने बच्चों को स्कूल इसलिए छुड़वा देते हैं क्योंकि बच्चे वहां कुछ सीखते ही नहीं। बहुत से बच्चे खुद ही स्कूल जाना छोड़ देते हैं क्योंकि वहां पढ़ाई नहीं, बल्कि पिटाई होती है। जहां लड़कियों के लिए भी पुरूष शिक्षक हैं वहां छोटी लड़कियों के साथ यौन दुर्व्यवहार होते हैं। निम्न जातियों के बच्चों को अतिरिक्त पिटाई, जातिगत उलाहने, गालियां और अन्य तरह का अपमान भी झेलना पड़ता है। जातिगत पूर्वाग्रह बहुत व्यापक और गहरे हैं। पूर्व दिल्ली के शकरपूर इलाके के स्कूल की पुरानी दलित छात्राओं ने टेलीविज़न की एक टीम से कहा कि उन्होंने स्कूल इसलिए छोड़ा क्योंकि शिक्षिकाएं उनको हमेशा यह कहती थीं कि उनके हाथ में झाड़ू अच्छी लगती है, पेन नहीं। इन लड़कियों को यह भी सुनना पड़ता था कि वे नाली के कीड़े हैं। जब इस टेलीविज़न टीम ने शाला के प्रिंसिपल से छात्राओं के इस कथन पर टिप्पणी करने को कहा तो प्रिंसिपल ने कहा कि हम ऐसे कहेंगे तब तो शिक्षा का मतलब ही बदल जाएगा। हमें तो इन कीड़ों को ऊपर उठाना है। कीचड़ से खाद बनाना है।'' बात सिर्फ शिक्षक के भेदभावपूर्ण व्यवहार की नहीं है। इससे भी गंभीर बात यह है कि ऐसी परिस्थितियों में बच्चे शिक्षक के मत को मान लेते हैं, यानी दलित होने के कारण उनमें कुछ कमी है और वे पढ़ने के क़ाबिल ही नहीं हैं। अथवा दलित होने के कारण वे धीरे सीख पाते हैं। जो बच्चे इस मत को नहीं स्वीकारते, वे पिटते हैं या स्कूल छोड़ देते हैं।

इसके अलावा मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, हरियाणा, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों की सामंती व्यवस्था, भूमि का असमान वितरण, पितृसत्तात्मकता आदि जैसी परिस्थितियां गरीब और दलित जाति के बच्चों की शिक्षा की परिस्थितियों को और जटिल तथा नकारात्मक बना देती है। इन कारकों पर व्यवस्थित अध्ययन न के बराबर रहता है। इनकी झलक दलित साहित्य या कुछ प्रगतिशील लेखकों की कहानियों में ही मिलती है। आर्थिक अभाव और घोर सामाजिक उत्पीड़न, जो आमतौर पर स्कूली व्यवस्था में भी बरकरार रहता है, किस प्रकार के प्रभाव बच्चों के मानस पर छोड़ता है और शैक्षणिक उपलब्धि के स्तर में बाधक बनता है ये मुद्दे शोध के हिस्से नहीं बनते हैं। स्कूलों की इस चिंताजनक परिस्थिति से प्रश्न भी उठता है कि पांच वर्षों तक स्कूल जाने के बाद भी यदि बच्चे पढ़ना–लिखना नहीं सीख पाते तो क्या उनके मन में शिक्षा के प्रति गहरी कुंठाएं नहीं पनपती होंगी? या यह अहसास और गहरा नहीं होता होगा कि हम इस लायक ही नहीं हैं? (शुक्ला रश्मि, 1998)। ये असफलताएं बच्चों की अपनी आत्मछवि, आत्मसम्मान, आत्मविश्वास पर कैसे चोट करती हैं इसकी समझ शिक्षा जगत में न के बराबर है।

शिक्षा और जन आंदोलन : प्रकाशक– ग्रंथ शिल्पी से साभार।

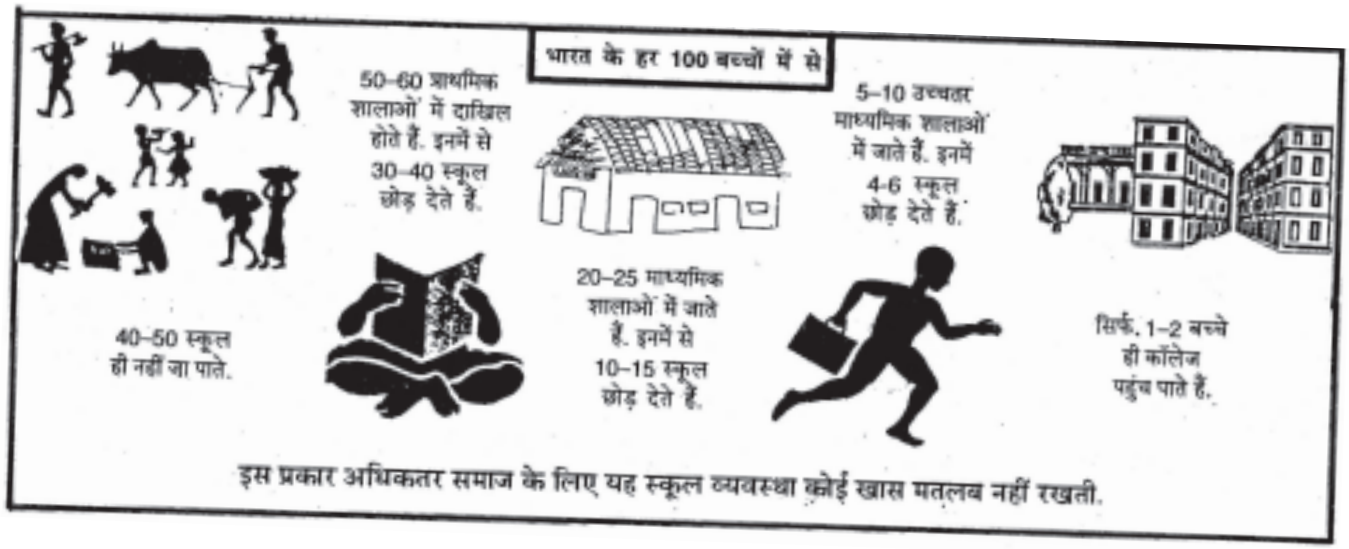

स्रोत : खतरा स्कूल

गोविन्द सिंह गहलोत

एक दास्तान सिंगल टीचर स्कूल की

लगभग 15 मिनट स्कूल के बाहर शिक्षक अपना ओजस्वी भाषण देते रहे (जिसमें राजनीति, भ्रष्टाचार, ट्रांसफर की बातें थीं)। तब उन्हें याद आया कि कक्षा में बच्चे शोर कर रहे हैं। शिक्षक कक्षा में आए व टेबल पर पैर पसारते हुए बैठ गए और बच्चों को कहा ''सब कक्षा के अनुसार बैठ जाओ रे''।

यह विद्यालय मुख्य सड़क से 8 किलोमीटर अन्दर कच्चे रास्ते पर स्थित है ज़हां पहुंचने के लिए 8–10 खेतों को पगडन्डी के रास्ते से पार करते हुए पहुंचना पड़ता है। मैं सुबह 7:10 पर विद्यालय भवन के सामने पहुंचा। उस समय 8–10 बच्चे आ चुके थे जो अपने थैले इधर–उधर पटक कर खेल रहे थे। 10–15 मिनट बाद विद्यालय के सामने से दो व्यक्ति गुज़रे जो किसी काम से शहर जा रहे थे। उनसे बातचीत करने पर पता चला कि यह विद्यालय 8:30–9:00 के पहले कभी नहीं खुलता और पिछले 8 दिनों से बंद है। उन्होंने शिक्षक का मोबाइल नंबर देकर कहा कि आप बात कर लें। क्या पता उनका आज आने का है या नहीं। वरना आप फ़ालतू में उनका इंतजार करेंगे। 7:30 पर उनसे बातचीत करने पर पता चला कि अभी वे घर से निकले हैं और स्कूल तक पहुंचने में 8:30 बजेंगे, क्योंकि पहले वे अपनी बहन को छोड़ने जाएंगे फिर अपने स्कूल आएंगे। इसी दौरान 10–15 बच्चे और आ गए। एक बड़ा लड़का जो पांचवीं कक्षा का था, उसके पास स्कूल की चाबी थी। उसने ताला खोला। अन्य लड़कों की मदद से कमरे की सफ़ाई की व बच्चों को कक्षा में आकर बैठने के लिए कहा। लेकिन कुछ बच्चे तो अभी भी स्कूल के बाहर खेलने में व्यस्त थे। इसी दौरान खेतों के सन्नाटे को चीरती हुई दो मोटर साइकिलों की आवाज़ सुनाई दी तो हमने सोचा शिक्षक महोदय आए होंगे। लेकिन गांव के व्यक्ति ने कहा, ''नहीं ये तो सुज़ुकी की आवाज है, सर के पास तो हीरो होण्डा है।'' इसी बीच दोनों व्यक्ति अपने–अपने काम से निकल गए। अब 8–10 बच्चे और आ गए। बड़े बच्चे उनको कमरे में व्यवस्थित रूप से बैठाने का काम कर रहे थे। मैं बच्चों के साथ कुछ खेल खेल रहा था। इतने में पांच–सात बच्चे बाहर से चिल्लाते हुए आए और ज़ोर–ज़ोर से चिल्लाने लगे जैसे उनकी कोई मुराद पूरी हो गई हो। वे कह रहे थे कि 'सर' आए हैं।

इतने में शिक्षक भी आ गए। उन्होंने कक्षा के बाहर ही अन्य व्यक्ति से नाराज़ होते हुए कहा कि ''ये ताला किसने खोला है, मेरे को मरवाओगे क्या?'' यह सुनकर मैं बाहर आया तो सर ने कहा, ''आते ही मुझे फोन किया होता। मुझे 7 बजे फोन कर देते तो मैं समय पर आ जाता। मेरा तो स्कूल आने का यही समय है। अरे साब 6 महीने से इस स्कूल ने डूबो रखा है। आपको तो मालूम ही है कि रास्ता कैसा है। बहन को स्कूल छोड़ने के बाद यहां आता हूं। एक शिक्षक वाले स्कूल में तो ऐसा ही होगा। वहां से शिक्षकों को क्यों नहीं हटाते, जहां एक ही स्कूल में ज़रूरत से ज्यादा पदस्थ हैं। सब राजनीति है, भ्रष्टाचार है, हम जैसे ग़रीब मास्टर मारे जाते हैं।''

लगभग 15 मिनट स्कूल के बाहर शिक्षक अपना ओजस्वी भाषण देते रहे (जिसमें राजनीति, भ्रष्टाचार, ट्रांसफर की बातें थीं)। तब उन्हें याद आया कि कक्षा में बच्चे शोर कर रहे हैं। शिक्षक कक्षा में आए व टेबल पर पैर पसारते हुए बैठ गए और बच्चों को कहा ''सब कक्षा के अनुसार बैठ जाओ रे''। उस कक्षा में 5 लाइनों में 46 बच्चे बैठे हुए थे। पहली, दूसरी के बच्चे दीवार का सहारे लेकर बैठे हुए थे। ज़्यादातर बच्चे अपने साथ पानी की बोतलें लेकर आए थे। कुछ बच्चों की बोतलों का पानी फर्श पर ढुला हुआ था और बच्चे उसी में बैठे हुए थे। तब सर ने पांचवीं की 2 बच्चियों को आगे बुलाकर कहा, ''अरे छोरियों, जो कविताएं बोलवाते हो उनमें से जो याद हैं वो सबको बुलाओ'' तब उन बच्चियों ने दो कविताएं बुलवाई व सभी बच्चे इसका दोहरान किए जा रहे थे। यह कार्य करीब 40 मिनट तक हुआ। उन्हीं 2 कविताओं का बार–बार दोहरान करवाया जा रहा था।

इसी दौरान शिक्षक बाहर से आए दो आगन्तुक जिनमें से एक ने शिक्षा मित्र योजना के तहत इसी स्कूल में 6 माह तक सहायक शिक्षक के रूप में पढ़ाया था, उनसे बात कर रहे थे और आश्वासन दे रहे थे कि मैं तुम्हें वापस स्कूल में लगाऊंगा। मेरी बड़ी एप्रोच है। इस तरह की बातें लगभग 30 मिनट तक चलती रही। इस दौरान 8–10 छोटे बच्चों ने अपनी एक

नींद पूरी कर ली व इसका शिक्षक को कोई अहसास भी नहीं था। इसी बीच कुछ बच्चे ज़्यादा शोर करने लगे, तब शिक्षक को यह अहसास हुआ कि वे कक्षाकक्ष में हैं। शोर करने वाले बच्चों को डांटने लगे और 1–2 लड़कों के पास जाकर उनकी पिटाई कर डाली। वापस आकर अपनी कुर्सी पर पैर फैलाकर बैठ गए। इसी बीच एक समुदाय सदस्य और आ गए व उनको भी शिक्षक ने बिठाकर सरकार, भ्रष्टाचार और पोषाहार जैसी बातें करने लगे। इसी बीच आगन्तुक ने बीड़ी जलाकर शिक्षक को दी तो उन्होंने कहा, ''मेरे लिए तम्बाकू बनाओ''। सदस्य बीड़ी का धुंआ बच्चों के ऊपर छोड़ने लगा। कुछ समय के लिए मुझे यह महसूस हुआ कि मैं कक्षा में बैठा हूं या चौपाल पर। इसी बीच एक लड़का पांचवीं का, अपनी स्वेच्छा से आगे आया व कक्ष में लगे नैतिक वाक्यों का दोहरान करवाने लगा। सभी बच्चे टूटी–फूटी भाषा में अटक–अटक कर बोल रहे थे। ''सदा सत्य बोलो'', ''शिक्षक वह दीपक है जो खुद जलकर दूसरों को रोशनी देता है''।

मैं सोचने लगा कि हम जिस तरह के शिक्षक व शिक्षा की कल्पना कर रहे हैं, क्या वह साकार रूप लेगी? इसी दौरान 10:00 बजे के करीब दूर से एक महिला को सिर पर कुछ सामान रखकर स्कूल की तरफ आते देखा। मैं कुछ समझ पाऊं इससे पहले ही आगे की पंक्ति में बैठे बच्चे चिल्लाने लगे, ''खाना आ गया, खाना आ गया'' पूरी कक्षा देखते–देखते बाहर आ गई। शिक्षक ने राहत की सांस ली, चलो भीड़ निकली।

इसी बीच शिक्षक से बातें करने वाले दोनों आगन्तुक बाहर चले गए और शिक्षक टेबल के ऊपर टांगें फैलाकर सो गए।

बच्चों ने बाहर एक घण्टे तक पोषाहार खाया व उसके बाद बाहर आधा घण्टा और खेल लिए तब तक शिक्षक महोदय की नींद नहीं खुली। कुछ बच्चे कक्षा में आकर शोर करने लगे तब शिक्षक उठे और दो बच्चों को मुर्गा बनाकर बाहर आए। और अन्य बच्चों को डांटने लगे। अब तब सब बच्चे आकर कक्षा में बैठ गए।

शिक्षक ने मुझसे कहा कि एक शिक्षक वाली सभी स्कूल ऐसे ही चल रही हैं। आप जाकर देखना। अब मुझे 'डाक' के काम से जाना है, आप इनके साथ कुछ खेल, कविता करो। मैं तो जा रहा हूं। अब कल मिलेंगे। यह कहकर हमारे जवाब की प्रतीक्षा किए बगैर शिक्षक महोदय ने अपनी मोटर साइकिल स्टार्ट की और क्षणभर में हमारी आंखों से ओझल हो गए। मैं शिक्षक को जाते हुए देखता रहा। स्कूल के बच्चे भी चिल्लाते हुए बाहर आए व अपने घरों की ओर सरपट भागे। इस पूरे अवलोकन के बाद मैं यह सोचने लगा कि किसको दोष दूं, शिक्षक को, हमारी शिक्षा व्यवस्था को या सरकार को? इसका जवाब किसके पास मिलेगा, यही सोचकर मैं बुझे मन से उस स्कूल से लौट आया।

गोविंद सिंह गहलोत, विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, उदयपुर।

क्या कहते हैं शिक्षक?

ज़ाहिर है कि आज देशभर में सबसे ज़्यादा सरकारी स्कूलें मौजूद हैं। देश का आमजन अपनी बच्ची या बच्चे को इन्हीं सरकारी स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजता है। आजकल गुणात्मक शिक्षा की बातें ज़ोर–शोर से हो रही है। बच्चों को स्कूली दायरे में लाने की मशक्कतें की जा रही है।

हमने एक स्कूल के प्रधानाध्यापक और कुछ शिक्षकों से अनौपचारिक चर्चा की। हमने उनके सामने स्कूलों से ताल्लुक रखने वाले सवाल रखे। जो चर्चाएं और चिंताएं व्यक्त की गईं उसमें गुणात्मक शिक्षा नदारद है।

सरकार का लक्ष्य है कि शिक्षा का प्रसार होना चाहिए। कोई निरक्षर न रहे। जॉब से संबंधित परीक्षा को फाईट करने के लिए हम बच्चों को न्यूनतम योग्यता देते हैं। यहां हम लोग बच्चों को डिग्री देते हैं। कोई काम करने का व्यावसायिक प्रशिक्षण तो नहीं देते। हम तो उनको किताब की शिक्षा देते हैं। उनका उस कक्षा का कोर्स पूरा करवाते हैं।

किसी भी परीक्षा में बैठने के लिए आठवीं, दसवीं पास होना अनिवार्य है। चूंकि दसवीं के बाद बच्चों को विषय चुनने होते हैं। इसलिए हम लोग बच्चों को डिग्री देते हैं ताकि आगे चलकर नौकरी लग जाए। इस तरह शिक्षा पाकर बच्चे अच्छे अंक प्राप्त करेंगे और आर.ए.एस., आई.ए.एस., डॉक्टर, इंजीनियर आदि बनेंगे।

बच्चों को गणित क्यों पढ़ाना चाहिए? इस पर प्रधानाध्यापक कहते हैं कि वे ख़ुद गणित की डिग्री लिए हुए हैं। गणित की डिग्री के कारण कहीं भी नौकरी आसानी से लग जाती है। इसलिए बच्चों को गणित ज़रूर पढ़ाना चाहिए।

प्रधानाध्यापक का पूरा रोष सरकारी व्यवस्था को लेकर था। उनका कहना था कि सरकार प्राथमिक को मध्य विद्यालय में और मध्य को माध्यमिक विद्यालय में उत्क्रमित तो कर देती है लेकिन विद्यालय में सुविधा के नाम पर कुछ नहीं दिया जाता। एक तो शिक्षकों की कमी रहती है और दूसरी साधनों की। अब इस स्थिति में बच्चे की परीक्षा तो ली ही जाएगी। वह परीक्षा में बैठेगा। चूंकि कुछ भी पढ़ाई नहीं हुई है इसलिए वह फ़ेल होगा। इससे सरकारी विद्यालय की छवि ख़राब होगी। हमें तो स्कूल में नियत समय पर पाठ्यपुस्तक ख़त्म करना रहता है, सिलेबस खत्म करना रहता है। अच्छे परिणाम भी देने रहते हैं। यदि शिक्षक ईमानदारी से काम करे तो यह संभव है। शिक्षक ऐसा हो जो अपने व्यवसाय के प्रति समर्पित हो। उसका काम कक्षा में अध्यापन करना है। उसे समय पर आकर अपना काम करना चाहिए। व्यर्थ की बातों में अपना वक़्त बर्बाद नहीं करना चाहिए।

प्रधानाध्यापक का कहना था कि हमारे हाथ में कुछ नहीं है। हम व्यवस्था को नहीं बदल सकते। जब तक शिक्षा में राजनीति का हस्तक्षेप ख़त्म नहीं होगा तब तक

शिक्षा की हालत नहीं सुधर सकती। कुछ देशों में शिक्षा संबंधी नीतियां शिक्षक तय करते हैं लेकिन हमारे यहां नेता और अधिकारी। हम पर तो उनके द्वारा चुने गए पाठ्यक्रम थोप दिए जाते हैं जिसे हमें पढ़ाना पड़ता है।

एक शिक्षक का कहना था कि केवल सेमिनार करने और पत्रिकाएं निकालने से शिक्षा में कोई परिवर्तन नहीं होगा। परिवर्तन एक सीमित क्षेत्र में होगा यदि समर्पित कार्यकर्ता हों। गांधीजी और टैगोर कहते हैं कि मातृभाषा में शिक्षा दो। लेकिन हमारे यहां कहा जाता है कि अंग्रेज़ी के बिना काम नहीं चल सकता। चीन और जापान का उदाहरण लें वहां शिक्षण मातृभाषा में होता है। फिर उनका काम अंग्रेज़ी के बिना कैसे चलता है।

प्रधानाध्यापक का कहना था कि सुप्रीम कोर्ट का आदेश है कि क्रीमी लेयर को आरक्षण नहीं दिया जाएगा। कोई एस.सी, एस.टी. आरक्षण का लाभ लेकर कलेक्टर बन गया तो उसके बेटे–बेटी को आरक्षण नहीं मिलेगा। लेकिन इस पर अमल कहां होता है।

विद्यालय को पोषाहार कार्य से मुक्त रखना चाहिए। संबंधित बच्चों के अभिभावकों को पोषाहार देना चाहिए। एक बार हम लोग बी.पी.एल. का सर्वे कर रहे थे। मुश्किल से 5 प्रतिशत जनसंख्या भी बी.पी.एल. के मापदंड में नहीं आती। जिनको बी.पी.एल. का लाभ मिलना चाहिए उन्हें नहीं मिलता। जो दबा है वह और दबता ही जा रहा है और फर्जी लोगों को आरक्षण और बी.पी. एल. का लाभ मिल रहा है।

मैं तो कह रहा हूं सरकार हर साल एस. एस.ए. पर लाखों रुपया खर्च करती है। लेकिन आऊटपुट क्या मिलता है? मेरा तो मानना है कि एस.एस.ए. बंद होना चाहिए।

एक दूसरे शिक्षक का कहना था कि नीतियां बंद कमरों में बैठकर तय होती हैं। जिन बच्चों के लिए तय हो रही हैं उनकी समस्याएं जानने के लिए उनके बीच जाना पड़ेगा फिर उनके संदर्भ में कौन सी स्थिति लागू हो, इस पर विचार करना चाहिए। शिक्षाशास्त्री अपने जो भी विचार शिक्षा में नवाचार और बदलाव के लिए देते हैं उन्हें सबसे पहले तो वस्तुस्थिति को जानना पड़ेगा। मैदान में उतरना पड़ेगा। उन बच्चों के साथ का करना पड़ेगा।

हिन्दुस्तान में पुस्तकें लिखना बहुत आसान है लेकिन काम करने का प्रचलन घटता जा रहा है।

आदर्श विद्यालय और आदर्श शिक्षक, यह स्वप्न की बात है। लच्छेदार भाषण देना और उपदेश देना अलग बात है। राज्य की बड़ी–बड़ी संस्थाएं बहुत बड़े–बड़े लच्छेदार भाषण देती हैं लेकिन काम नहीं करती हैं। ऐसी संस्थाओं को बंद होना चाहिए। इनका कोई औचित्य नहीं है। हक़ीक़त को बिना जाने आप शिक्षा में बदलाव कैसे लाएंगे?

प्राइवेट स्कूल स्थायी हल नहीं देते हैं। जब स्थिति ख़राब होने लगती है तो बच्चों को स्कूल से निकाल देते हैं। अंततः वे बच्चे सरकारी स्कूल में आते हैं। नवीं कक्षा में जो बच्चा फ़ेल होता है तो उसे वे निकाल देते हैं। हां, इसका दूसरा तरीका वे बताते हैं कि मोटी फीस जमा कराओ। इस तरह पैसा लेकर उन बच्चों का नामांकन कर लेते हैं। फिर फ़ेल होने पर उन्हें निकाल देते हैं और वे बच्चे हमारे हिस्से में आते हैं। एक और समस्या है सरकारी स्कूलों की कि इन पर गैर शैक्षणिक कार्यों का भी बोझ रहता है। गैर शैक्षणिक कार्यों के चलते पढ़ाई पर बुरा असर पड़ता है। यह भी देखा गया है कि शहर के स्कूल में शिक्षकों की संख्या तो पर्याप्त रहती हैं लेकिन दूर दराज़ के गांवों में शिक्षक जाना नहीं चाहते। वहां शिक्षकों का अकाल रहता है।

कुमार अनुपम

पढ़ाई पर हावी पिटाई

अमूमन सभी बच्चे अध्यापकों से पिटते नज़र आए, कुछ हाथ से तो कुछ छड़ी से। कुछ बच्चों के पिटने का कारण यह था कि उनमें से किसी एक ने दरवाजे की लोहे की पट्टी निकाल डाली थी। कुछ खेल रहे थे तो कुछ आपस में झगड़ रहे थे।

स्कूल में बाउंड्री वाल तो दिखायी दे रहा था लेकिन खेल का मैदान नहीं था। हालांकि उस छोटे से लॉन में बच्चे कबड्डी खेल सकते थे। प्रधान शिक्षक 10:45 आए। कुछ समय गेट खोलने में लगा। शिक्षक ने बच्चों से कहा कि तुम लोग प्रार्थना के लिए तैयार हो जाओ। सबसे पहले अपनी–अपनी कक्षा की सफाई करो। झाड़ू लगाने के बाद सभी बच्चे प्रार्थना में उपस्थित हुए। दूसरे शिक्षक प्रेयर करा रहे थे। एक बच्चा पंक्तियां बोलता था, दूसरे दोहराते थे। राष्ट्रगान, राष्ट्र गीत, सरस्वती की वंदना आदि प्रार्थना में हुआ। परेड भी अद्‌भुत तरीके का था। बच्चे अपने पांव निर्देशानुसार नहीं पटकते थे। अपनी मन–मर्जी से हाथ–पांव चलाते थे। कुछ के पैरों में जूते थे, कुछ ने चप्पल पहना था तो कुछ नंगे पांव ही थे। अधिकांश बच्चे स्कूल परिधान में थे, कुछ रंग–बिरंगे वस्त्र पहने थे। किसी के पेन्ट पर पैबंद भी लगे थे।

प्रार्थना के बाद दो अलग से कमरों में दो कक्षा के बच्चे चले गए। पेड़ की छाया में एक कक्षा के बच्चे आ गए। बरामदे में शेष कक्षा के बच्चे बैठ गए। कक्षा में जगह की कमी होने के कारण एक बच्चा कुर्सी पर बैठा था। करीब आधे घंटे के बाद एक शिक्षक आए और उसे डांटकर नीचे बैठा दिया। कक्षा की टेबल पर एक छड़ी रखी थी लेकिन शिक्षक भी अपने साथ लेकर आए थे।

सभी बच्चे अपने–अपने घर से सीमेन्ट या खाद के बोरे लाते हैं, उसी पर बैठते हैं और उसी बोरे के बने झोले में अपनी पुस्तकें रख कर लाते हैं। दो छोटे–छोटे कमरे थे जिनमें खिड़कियां थीं, उससे लगे निर्माणाधीन कमरे में बच्चों को खाना खिलाया जाता है। उसके बगल के कमरे में पोषाहार से संबंधित सामान रखा था और अंतिम कमरा प्रधान शिक्षक का था जिसमें एक ओर दरी बिछी थी। दीवारों पर महापुरुषों के एकाध चित्र दिखे, त्रिभुज के प्रकार का एक चित्र टंगा था। नक्शे और मानचित्र भी दो–तीन नज़र आए। एक जीव–विज्ञान से संबंधित चित्र दिखाई दिया। दिशा से संबंधित कार्ड बोर्ड पर बना चित्र भी था। प्रधान शिक्षक के कमरे में थाली वगैरह, नमक के पैकेट आदि भी रखे थे। एक टेबल पर पानी का घड़ा रखा गया था। बच्चों के पोषाहार का मीनू दीवार पर पेन्ट करके लिखा गया

था। बरामदे की दीवारों पर महापुरुषों के कथन, रामचरित मानस के उद्धरण आदि पेन्ट करके लिखे गए थे। बरामदे की दीवार पर राष्ट्रगान, राष्ट्र गीत, सरस्वती वंदना भी पेन्ट करके लिखे गए थे। बरामदे के खंभों पर राष्ट्रीय फूल, राष्ट्रीय पक्षी, राष्ट्रीय चिह्न के चित्र बने थे।

प्रसाधन कक्ष के नाम पर पांच छोटे–छोटे कमरे थे जिसमें से दो में ताले जड़े थे। एक में दरवाज़ा था बाकी दो दरवाज़े से वंचित थे। प्रसाधन कक्ष से बदबू आ रही थी और वह साफ नहीं था। पानी पीने के लिए हैण्डपंप था।

अमूमन सभी बच्चे अध्यापकों से पिटते नज़र आए, कुछ हाथ से तो कुछ छड़ी से। कुछ बच्चों के पिटने का कारण यह था कि उनमें से किसी एक ने दरवाजे की लोहे की पट्टी निकाल डाली थी। कुछ खेल रहे थे तो कुछ आपस में झगड़ रहे थे।

कक्षा चौथी में शिक्षिका 8:05 में पहुंची। कक्षा में 13 बच्चे थे। शिक्षिका ने दो मिनट में हाजिरी ली फिर बच्चों से पूछा कि किसने गृहकार्य किया है? जवाब नहीं मिलने पर सवाल को बोर्ड पर लिख दिया। शिक्षिका ने बोर्ड पर भाग और गुणा के कुल 9 सवाल लिखे।

इस दौरान लिखे सवालों को बच्चे बोर्ड पर देख रहे थे। इन सवालों को शिक्षिका ने एक–एक करके सभी बच्चों को डांट–फटकार से समझाया। बच्चे एक–एक करके शिक्षिका के पास जाकर पूछते थे। शिक्षिका उन्हें 2 का, 3 का, 5 का पहाड़ा बनाने को कहती थीं। एक बच्ची से प्रश्न का हल बोर्ड पर बोलने को कहा। उसने बोर्ड पर सवाल बनाया। फिर दूसरे ने प्रश्न को हल किया। इसी दौरान दो–तीन बच्चे बातचीत कर रहे थे। फिर तीसरी बच्ची ने प्रश्न को हल किया। अब शिक्षिका द्वारा प्रश्न का हल किया गया। 5 का पहाड़ा बच्चों से बुलवाया। 5 का पहाड़ा 5 बार पढ़ने पर 25 आता है जो कि 23 से बड़ा है इसलिए उससे छोटा यानी 5 का पहाड़ा 4 बार पढ़ते हैं तो 20 आता है। फिर 5 का पहाड़ा 6 बार पढ़ने पर 30 आता है। इस तरह 2 शेष बचता है। इस दौरान बच्चे बोर्ड पर बने सवाल पढ़ते हैं। नहीं समझ में आने पर पूछते हैं। सवाल बनाकर दिखाते हैं। इन सवालों को अपनी कॉपी में उतारते हैं। इस बीच दो बच्चों में लड़ाई होती है। एक लड़की पेज फाड़कर फेंकती है। तीन बच्चे बातचीत करते हैं। शिक्षिका द्वारा बोर्ड पर सवाल हल करना जारी रहता है। फिर प्रश्नों को गृह कार्य के लिए बोर्ड पर लिखा जाता है।

बच्चे बोर्ड से सवाल उतारते हैं। शिक्षिका बच्चों से कॉपी–किताब ठीक से रखने तथा रोज विद्यालय आने को कहती हैं। तीन–चार बच्चे इधर–उधर जाते हैं। एक छोटा बच्चा जो अपनी बहन के साथ आया है, उसके द्वारा बनाए गए जहाज़ से खेलता है। शिक्षिका का बेटा भी कक्षा में उपस्थित है जो प्राईवेट विद्यालय में पढ़ता है। उसका विद्यालय 12:30 से शुरू होता है। बीच–बीच में शिक्षिका द्वारा उसको भी बताया जाता है।

इसके बाद 'नानी तेरी मोरनी को मोर ले गया' 'अहा, टमाटर बड़ा मज़ेदार' गीतों को शिक्षिका हाव–भाव से गाती है और सभी बच्चे उस गीत को हाव–भाव से दोहराते हैं।

फिर शिक्षिका विज्ञान की पुस्तक में पाठ–8 खोलने को कहती हैं। यह पाठ ऊर्जा के बारे में है। शिक्षिका एक–एक पंक्ति को पढ़ती हैं और बच्चे उसका अनुसरण करते हैं। एक पैराग्राफ खत्म होने पर समझाती हैं, जैसे– ऊर्जा किसे कहते हैं? प्रकाश ऊर्जा क्या होती है? ऊष्मा ऊर्जा क्या होती है? ऊर्जा के स्रोत कौन–कौन से हैं? हमें ऊर्जा कहां से मिलती है? एक पुस्तक को तीन बच्चे देखते हैं। दो बच्चे पोषाहार निर्माण की ओर ध्यान देते हैं। फिर शिक्षिका ध्वनि ऊर्जा, विद्युत ऊर्जा से संबंधित अनुच्छेद को पढ़ती है और बच्चे अनुकरण वाचन करते हैं। इसके बाद शिक्षिका ध्वनि ऊर्जा, विद्युत ऊर्जा को समझाती है। सौर ऊर्जा के बारे में बताती है। ऊर्जा रूपांतर का वाचन कराकर समझाती है। बच्चों से ऊर्जा के दुरुपयोग पर चर्चा करती है। फिर बोर्ड पर खाली जगह के दो प्रश्नों का हल बोर्ड पर लिख देती है। बच्चे लिखने के लिए कॉपी निकालते हैं। ऊर्जा रूपांतरण में 'आओ प्रयोग करें' का भी वाचन शिक्षिका द्वारा कराया जाता है। शिक्षिका बच्चों से कॉपी पर पाठ का नाम लिखने और खाली जगह के प्रश्न लिखकर भरने को कहती है। इसी बीच एक बच्ची को मात्रा मिलाकर शब्द पढ़ाना और वाक्य पढ़ना बताती है। दूसरे बच्चे को गणित का प्रश्न भी बताती है। शिक्षिका द्वारा 'समुद्र', 'स्त्रोत' जैसे शब्दों का उच्चारण किया जाता है।

विद्युत ऊर्जा से जब पंखा चलता है तो विद्युत ऊर्जा यांत्रिक ऊर्जा में बदल जाती है। प्रकाश ऊर्जा की मदद से हम वस्तुओं को देखते हैं। सूर्य से हमें प्रकाश ऊर्जा और ऊष्मा ऊर्जा दोनों मिलती हैं। ऊष्मा ऊर्जा के ही कारण गीले कपड़े धूप में रखने पर सूख जाते हैं। विद्युत ऊर्जा से हमें प्रकाश और ऊष्मा दोनों मिलती है। जब बल्ब जलता है तो उससे प्रकाश ऊर्जा मिलती है। छूने पर वह गर्म लगता है इसलिए उससे ऊष्मा ऊर्जा भी मिलती है। इस तरह से ऊर्जा दूसरी ऊर्जा में बदल जाती है। इसी तरह ध्वनि ऊर्जा वाद्य यंत्रों, लाउड स्पीकर, टी.वी., मानव के मुख, चिड़ियों की चहचहाहट आदि से निकली है। हम जब बात करते हैं, चीखते हैं, चिल्लाते हैं, मोटरसाइकिल, जीप, बस आदि से भी ध्वनि ऊर्जा निकलती है। बच्चे इन बातों को सुनते हैं। शिक्षिका के प्रश्न का जवाब भी देते हैं।

टिप्पणी– गांव में स्कूल हैं, शिक्षक हैं और बच्चे भी हैं। शिक्षक पढ़ा रहे है। क्या सीखने–सिखाने की प्रक्रियाएं जीवंत हो पा रही है?

कुमार अनुपम, विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, उदयपुर।

के.आर. शर्मा

स्कूल की मार

जैसा कि हमारे समाज में होता है जैसे ही बच्ची या बच्चा चलने–फिरने, बोलने–बतियाने लगे, थोड़ा बहुत समझने लगे कि उसे स्कूल में भर्ती करा दिया जाता है। आखिर बच्चे को घर पर रखकर करें भी क्या! कोई बिगाड़ना थोड़े ही है। और बच्चों को पढ़ाने के लिए स्कूल के अलावा दूसरी जगहें भी कहां हैं समाज में। यानी कि स्कूल का दूसरा कोई विकल्प भी तो नहीं है ना।

जब हमारी बेटी साढ़े तीन साल की हो गई तो उसे स्कूल में भर्ती कराने की चर्चाएं, चिंताएं होने लगीं। हालांकि हम लोग बच्ची को स्कूल में भर्ती कराने में देरी कर चुके थे, ऐसा कुछेक लोगों का कहना था। साढ़े तीन साल की बच्ची 'सोनू' पता नहीं कितनी चीज़ों को अपना खिलौना बना डालती थी, गीत गाती थी, तंग भी करती थी, इसलिए उसे स्कूल में भर्ती कराना हमारी मजबूरी थी। जब स्कूल में भर्ती कराने की बारी आई तो हमने तय किया था कि कम–से–कम एक ऐसे स्कूल में बच्ची को डालें जिसमें उसे खुलापन मिले, जहां उसके बचपन का ध्यान रहे। चूंकि 'तोत्तोचान' नामक एक जापानी बच्ची के बारे में लिखी गई पुस्तक को मैंने पढ़ रखा था इसलिए उस नन्हीं–सी बच्ची तोत्तो के वाकियात तस्वीर की शक्ल अख्तियार करके आंखों के सामने घूमने लगते थे। पुराने रेल के डिब्बे में तोत्तोचान की कक्षा लगती थी। कुल मिलाकर तोत्तो को इस नए स्कूल में बड़ा मज़ा आता था। स्कूल में उसको अपनापन लगता था, किसी प्रकार का डर नहीं। न ही ऊब होती थी स्कूल में। सब कुछ सहज और सबसे अहम बात यह थी कि सीखने–सिखाने की प्रक्रियाएं मौजूद थीं, चुनौतीपूर्ण किन्तु सहज। आप मानें या न मानें, पर हम ऐसे ही एक स्कूल की तलाश में थे। शहर के अनेक स्कूल छाने–सरकारी और प्राइवेट दोनों। दरअसल सरकारी स्कूलों से तो हम शहरी पढ़े–लिखे लोग नाक–भौं सिकोड़ने लगते हैं, यह बात किसी से छिपी नहीं है।

इसी दरम्यान मुझे पता चला कि शहर की एक प्रतिष्ठित कॉलोनी में सरकारी स्कूल था जिसको शिक्षा विभाग को बंद करना पड़ा, ''क्योंकि सरकारी स्कूलों में रखा क्या है।''

मन में यह सवाल बरकरार था कि आखिर सरकारी स्कूलों की पढ़ाई के तौर–तरीकों में तो कोई फर्क नहीं और प्राइवेट स्कूल अंग्रेज़ी का राग अलापते हैं। खैर सरकारी स्कूलों में देखी–समझी अव्यवस्था के चलते हमने तय किया कि किसी प्राइवेट स्कूल में ही बच्ची को भर्ती कराना उचित होगा। सो शहर की एक अच्छी समझी जाने वाली स्कूल में हमने अपनी बेटी 'सोनू' को भर्ती करा दिया।

घर का नाम सोनू, बाहर का नाम श्रुति। स्कूल में बच्ची के इन्टरव्यू के दौरान एच.एम. (हेडमास्टर) से काफी बतिया रही थी वो। सोनू का एडमिशन हो गया। नियम कानूनों के बारे में एच.एम. ने हमें बताया। कोई दर्जन भर से भी ज़्यादा नियम कानूनों को पालन करने के लिए हमसे हामी भरवाई गई।

हम कभी नहीं भूल सकते जब साढ़े तीन साल की नन्हीं–सी जान स्कूल जाने के लिए लालायित थी। हमारे आगे–आगे भागी जा रही थी। उसने अपने बस्ते में कुछेक खिलौने रखे थे। शायद सोचा होगा कि स्कूल में खेलने–कूदने को मिलेगा।

स्कूल पहुंचने पर उसकी टीचर ने हमें किताबों की एक लंबी फेहरिस्त थमा दी। बच्ची को टीचर के सुपुर्द किया। टीचर ने बच्ची

का बस्ता देखा, हमें वापस बुलाया और उसके बस्ते के खिलौने हमें यह कहकर दे दिए कि यहां इनकी ज़रूरत नहीं! वह अपने चहेते खिलौनों से जुदा नहीं होना चाहती थी, उसने ज़िद भी की। बहरहाल बस्ते में खिलौनों की जगह किताबों ने ले ली।

शाम का समय – सोनू स्कूल से घर लाई जा चुकी है। हालांकि बस्ते में नई–नई किताबें भरी थीं, किंतु उसने शाम को बस्ते की तरफ देखा भी नहीं और अपने खिलौनों में मशगूल हो गई।

दूसरे दिन वह स्कूल जाने के नाम पर सिसकाते हुए बोली– ''मैं स्कूल नहीं जाऊंगी।''

''क्यों नहीं जाओगी?'', उसकी मां ने पूछा।

''स्कूल तो गंदी है .. नहीं जाऊंगी।''

''टीचर डांटती है।''

''लिखने को कहती हैं टीचर।''

''वहां खेलने नहीं देते।''

''मेरी दोस्त से बात भी नहीं करने देतीं। हम सभी मुंह पर अंगुली रखने को कहती हैं।''

टुकड़े–टुकड़े में उसने सब कुछ बताया और वह फिर खेलने में व्यस्त हो गई।

सोनू स्कूल न जाने की हर संभव कोशिश करती है। अक्सर वह स्कूल जाने के समय हमारे पड़ोसी के घर चली जाती है। पर उसे स्कूल तो जाना ही है। जबरदस्ती सोनू को स्कूल भेजा जाता है।

कुछ ही दिनों में हमें अहसास हो गया कि स्कूल बच्ची को खुशियां प्रदान नहीं कर पाएगा। हम यह तो समझते हैं कि हर काम में खुशियां नहीं मिलतीं। और बच्चों को कठिन काम भी सौंपने चाहिए, पर उन कामों में चुनौतियां होनी चाहिए। हकीकत यह है कि स्कूल में बच्चों को चुनौतियां नहीं परोसी जाती।

एक दिन मैं सोनू से पूछता हूं, ''स्कूल में तुम्हें क्या अच्छा लगता है?''

वह कहती है, ''कुछ भी नहीं।''

''फिर भी, कुछ तो अच्छा लगता होगा?''

वह थोड़ा सोचती है, और कहती है, ''हां, क्लास के बाहर मैदान में कुत्ते के छोटे–छोटे बच्चे घूमते रहते हैं, वे बड़े अच्छे लगते हैं? पर टीचर तो खिड़की में से बाहर देखने भी नहीं देती!''

रोज़ का सिलसिला बन पड़ा था– सोनू का स्कूल जाने के दौरान रूठना, बहाने बनाना! वह दूसरी कक्षा में प्रवेश पा चुकी थी।

एक दिन जो वाकिया हुआ उसने हमारे दिलो–दिमाग को हिलाकर रख दिया। शाम को सोनू स्कूल से घर आती है। उसका खाने का डिब्बा ज्यों–का–त्यों है। पूछने पर बताती है टीचर ने नहीं खाने दिया।

''क्यों?'', सोनू की मां ने पूछा।

इस 'क्यों' का उसके पास कोई जवाब नहीं था। दूसरे दिन हम टीचर से मिले।

पूछने पर टीचर ने कहा, ''देखिए जो लिखने को दिया था वह इसने नहीं लिखा। इसलिए इसको खाना नहीं खाने दिया।'' (हमने देखा कि कक्षा में 8–10 नन्हें बच्चे बेंच पर खड़े हैं।)

हमने पूछा कि बच्ची ने लिखा नहीं इसलिए उसको दोपहर के खाने से वंचित रखना कहां तक तर्कसंगत है? क्या उसको खाना नहीं खाने देने से वह लिखेगी?

टीचर बड़े गुस्से में बोली, ''देखिए यह सब तो करना पड़ता है और मैंने उसकी पिटाई तो नहीं की है। थोड़ा–सा तो डराना पड़ता है।''

दरअसल अच्छे–से–अच्छे समझे जाने वाले स्कूलों में भी छात्रों को किसी–न–किसी प्रकार की सज़ा दी जाती है। मैं पूछना चाहता हूं कि क्या बिना सज़ा के बच्चों को पढ़ाया नहीं जा सकता? जबकि सच्चाई तो यह है कि स्कूल की पढ़ाने की प्रक्रियाएं सहज और रुचिकर नहीं होती और इस वजह से बच्चे ऊबने लगते हैं, शरारत करने लगते हैं। बच्चों को कक्षा की दीवार पर लगे ब्लेक बोर्ड पर फूल पत्ती का चित्र बनाकर पढ़ाया जाता है जबकि खिड़की में हाथ डालकर पत्ती तोड़ी जा सकती है।

तीसरी कक्षा में पानी के बारे में पढ़ाया जा रहा है–पानी में कौन–कौन–सी चीज़ें घुलती हैं? यह केवल ब्लेक बोर्ड पर बताया जाता है।

तीसरी में ही विज्ञान विषय में पेड़ के बारे में पढ़ाया जाता है। एक दिन सोनू ने घर आकर बताया कि पापा पौधे के बारे में टीचर

ने होमवर्क दिया है। होमवर्क कॉपी में चित्र बनाने से पहले मैंने छोटा–सा पौधा उखाड़ा और उसको बताया। अनेक सवाल–जवाब हुए। और फिर उसने कॉपी में उस पौधे का चित्र बनाया। टीचर ने जब कॉपी जांची तो पौधे के चित्र को काट दिया। इसलिए क्योंकि किताब में और उसकी कॉपी में बने चित्र में फर्क था। कॉपी में बनाया चित्र था तो पौधे का, पर उसकी पत्तियां लंबी न होते हुए गोलाई लिए हुए थीं। उसने जो देखा था हुबहू बना डाला था इस वजह से कॉपी में नोट मिला कि फिर से चित्र बनाओ। ऐसे और भी कितने ही मामलों में हमने सोनू को अपने आसपास की चीज़ों को देखने के लिए प्रेरित किया किंतु नतीजे उल्टे ही निकले। जो किताब में लिखा है बस वही सच है – टीचर कहती है।

एक कारण यह भी है कि सोनू को कोर्स की किताबें पढ़ने में ज़रा भी मज़ा नहीं आता। जबकि हमने देखा कि वह दूसरी कहानी–किस्सों की किताबें चाव से पढ़ती है। रविवार को अखबारों में बच्चों के कॉलम में प्रकाशित सामग्री को सोनू बड़े चटखारे ले लेकर पढ़ती है।

प्राइवेट स्कूलों की एक सबसे बड़ी दिक्कत यह भी है कि बच्चे स्कूल के अलावा घर पर भी चैन से नहीं जी सकते। स्कूल से घर आए कि होमवर्क के लिए जोत दिए जाते हैं।

बच्चों को क्या समझ में आया इससे कोई लेना–देना नहीं, होमवर्क पूरा होना चाहिए। और जो पूछा जाए उसका उत्तर दिया जाए – बस ताकि परीक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हो सके। हमने देखा कि जब सोनू तीसरी कक्षा में थी तब तीन–तीन घंटों तक तो उसको होमवर्क ही करना पड़ता था। यदि होमवर्क नहीं हुआ तो दूसरे दिन डायरी में एक लंबा–सा नोट पालक के लिए भेजा जाता है।

मैं सोचता हूं कि प्राइवेट स्कूल किस मायने में बेहतर होते हैं? क्या यहां के शिक्षकों का शैक्षिक स्तर बेहतर होता है? क्या यहां की शिक्षण पद्धति सरकारी स्कूलों से फर्क होती है! हम पिछले कुछ वर्षों से देख रहे हैं कि ऐसा तो कुछ भी नहीं। प्राइवेट स्कूलों में तो अंग्रेजी का बोलबाला होता है फिर भी सरकारी स्कूलों के शिक्षकों से शैक्षिक स्तर पर प्राइवेट स्कूल के शिक्षक बेहतर नहीं दिखे। न ही पढ़ाई के तौर तरीकों में कोई बुनियादी फर्क दिखा। बल्कि एक चीज़ ज़रूर दिखी कि प्राइवेट स्कूल के बच्चों को बस्ते का बोझा अधिक है। पाठ्य–पुस्तक निगम की पुस्तकों के अलावा दिल्ली–कलकत्ते के निजी प्रकाशनों की महंगी किताबें बस्ते का बोझ बढ़ा देती है।

अच्छे स्कूल समझे जाने वाले स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों के बस्ते भारी भरकम होते हैं, वहां अनुशासन का कहीं ज़्यादा दबदबा होता है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं – स्कूल के माहौल को एकदम असहज बनाने की भरपूर कोशिश होती है। शायद बच्चों को चारदीवारी में बंद करके उन्हें उबाने में स्कूल को आनंद और संतोष मिलता है। बच्चों को कंट्रोल करने के लिए शारीरिक दंड मिलता है या उनके साथ जो बर्ताव होता है, वह भी अक्सर हिंसात्मक होता है।

सोनू के स्कूल जाते हुए हम इतने मजबूर हो गए हैं कि चाहकर भी घर पर सीखने की प्रक्रियाओं पर ज़ोर नहीं दे पाते थे। क्योंकि हमें बच्ची को वह सब कुछ प्राथमिकता के आधार पर कराना होता है जो स्कूल चाहता है। स्कूल में प्रतिस्पर्धा का ज़बरदस्त बोलबाला है। पल–पल में प्रतिस्पर्धा है। यहां तक कि बाल सभा जो कि स्कूल का अनौपचारिक कार्यक्रम होना चाहिए, वहां भी हर बच्ची या बच्चे को बोलने की छूट नहीं दी जाती और वातावरण इस तरह बनता है कि उनमें ईर्ष्या की भावना पैदा कर दी जाती है कि मैं फलां से बेहतर हूं।

हमने अहसास किया कि सोनू जब अपनी मर्ज़ी से पढ़ने बैठती है तो उसके ज़ेहन में एक ही बात होती है कि उसने पढ़ाई नहीं की तो कम नंबर आएंगे, वह 'फेल हो जाएगी', 'टीचर जी डांटेंगी' वगैरह–वगैरह! और इस चक्कर में उसकी जिज्ञासाओं का दमन होता जा रहा है। वह स्कूल में तो सवाल पूछ नहीं सकती पर घर में चाहकर भी नहीं पूछती क्योंकि उसकी पढ़ाई जो करनी है।

कुल मिलाकर स्कूल बच्चों में यह भावना पनपाते हैं कि स्कूल में जो कुछ भी वे करते हैं उसका लक्ष्य परीक्षा में अच्छे अंक पाने से ज़्यादा कुछ नहीं।

बहरहाल, सोनू स्कूल के वातावरण से पीड़ित है। पर अब उसे ऐसा लगने लगा है कि स्कूल में तो यह सब होना ही है। यदि उसे कुछ समझ नहीं आ रहा या दिया गया काम पूरा नहीं कर पाई तो वह अपनी गलती समझती है। हालांकि शिक्षक ही इसका अहसास क्रूरतापूर्वक करवाते हैं। हम सोनू के दोस्तों को भी जानते हैं। उनकी भी कमोबेश यही स्थिति है। वे भी स्कूल के माहौल से पीड़ित हैं। पर वही सवाल है कि हमारे सामने स्कूल का कोई विकल्प है क्या?

अपने देश में लाखों बच्चे स्कूल नहीं जाते। उसका कारण उन बच्चों के परिवार की आर्थिक या पारिवारिक परिस्थितियों का महज प्रतिकूल होना नहीं बल्कि स्कूल का माहौल भी शायद एक कारक है उसमें। बच्चा आखिर स्कूल क्यों जाए?

के.आर. शर्मा, विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, उदयपुर।

क्या सोचते हैं बच्चे स्कूल के बारे में?

हमने बच्चों से उनके स्कूल के बारे में पूछा। वे स्कूल के बारे में क्या सोचते हैं? स्कूल में वे क्या–क्या करते हैं? आदि।

बच्चों ने बताया कि इधर–उधर भटकने से अच्छा है कि स्कूल में आ जाएं। यहां पढ़ाई होती है, खेलने को मिलता है और बालसभा में तो बड़ा मज़ा आता है। यहां पर हमें साफ़–सफ़ाई करनी होती है, पानी भरना होता है। शिक्षक के लिए कुर्सी लगानी होती है, पेड़–पौधे को पानी देना होता है। इसके अलावा स्कूल में प्रार्थना करते हैं, किताबें पढ़ते हैं।

एक स्कूल में क्या होना चाहिए? इसके जवाब में बच्चे कहते हैं खेलकूद ज़्यादा हो, पढ़ाई भी हो लेकिन पिटाई नहीं हो। साथ ही स्कूल में फिसलपट्टी, कूदने की रस्सी तथा क्रिकेट का सामान व फुटबॉल होना चाहिए। शिक्षक हमारे साथ खेल नहीं खेलते। हम अपने आप ही खेल लेते हैं। यहां पीने का पानी होना चाहिए। पेड़–पौधे होने चाहिए। अच्छी पढ़ाई होनी चाहिए ताकि हम सुधर जाएं व कुछ बन सकें। वे कहते हैं छत पर जाने के लिए सीढ़ियां भी होनी चाहिए।

बच्चों ने बताया कि समय पर स्कूल नहीं आने पर हमें डांट पड़ती है। डंडे खाने पड़ते हैं और मुर्गा भी बनना पड़ता है। शिक्षक स्कूल में से कचरा उठाने को कहते हैं।

गृहकार्य नहीं करने पर शिक्षक हमें पीटते हैं, मुर्गा बनाते हैं, हाथ ऊपर करके स्कूल के चारों ओर चक्कर लगवाते हैं। वे बैठक भी लगवाते हैं। लड़कियां भी मुर्गा बनती हैं। शिक्षक काला मोटा पाइप दिखाते हैं और उनके हाथ जो भी लग जाए, उसी से पीटते हैं। बच्चों का कहना है कि डंडा मारने से तो हम ज़्यादा बिगड़ जाएंगे।

बच्चों को स्कूल में सभी विषय पढ़ना अच्छा लगता है। लेकिन शिक्षक द्वारा सुनाई जानेवाली कहानियां सबसे अच्छी लगती हैं। उनके द्वारा सिखाए जानेवाले गीत, कविता भी अच्छे लगते हैं।

बच्चों को कैसा शिक्षक अच्छा लगता है? इस पर कुछ बच्चों ने कहा कि मैडम अच्छी लगती हैं क्योंकि वे हमें खेल खिलवाती हैं। एक बार वे हमारे साथ रस्सी कूदी थीं। वे प्यार से बोलती हैं, मारती नहीं हैं। कक्षा में बात करने या शैतानी करने पर शिक्षक दोनों हाथों पर डंडा मारते है। बच्चों ने आगे कहा कि मारने से हम कभी नहीं सुधार सकते। हम दूसरे अच्छे स्कूल में पढ़ना चाहते हैं।

हमें हेडमास्टरजी अच्छे लगते हैं क्योंकि वे ब्लैकबोर्ड पर समझाकर पढ़ाते हैं। एक शिक्षक से बहुत डर लगता है क्योंकि वे जूते की ठोकर मारते हैं। इससे एक छात्र बेहोश हो गया था। शिक्षक कहते हैं तुम्हारे दांत तोड़ दूंगा, यदि कोई बच्चा हंसता तो कहते हैं तुम्हारी मौत आ रही है क्या? एक–दो मेरे हाथ से मरोगे क्या?

सरकारी स्कूल के बच्चों से बातचीत के आधार पर तैयार।

रेशमा भारती

घर और स्कूल में अंतर

मेरे घर के वातावरण और स्कूल/कॉलेज के वातावरण अंतर रहा। और इस प्रकार मैं दो पाटों में बंटती चली गई...। एक ही बात के लिए स्कूल या कॉलेज में अलग माहौल होता और घर में अलग...

''अरे वाह! अच्छे नम्बर हैं। देखो मल्लिका हमारी बेटी के हिन्दी में कितने अच्छे नम्बर हैं।''

''हां, देखो तो...। मैंने कहा था न तुमसे, इसकी अभिव्यक्ति बहुत अच्छी है।''

''बेटा, मुंह क्यों लटकाया हुआ है? क्या बात है?... अच्छा, इधर आ, इधर बैठ मेरे पास...।''

''पापा, मैंने सोचा था... कम से कम सोशल साइंस में तो अच्छे अंक आएंगे...।''

''कोई बात नहीं बेटा। पचास प्रतिशत भी इसमें कम नहीं।... और फिर हमें पता है, हमारी बेटी की इन विषयों पर कितनी पकड़ है...। कितना सोचती, समझती है वह इन सबके बारे में...। हूं..। ये इक्ज़ामिनर तो निरे मूर्ख हैं, जो वे मेहनत की कद्र नहीं समझते...।''

''बेटे, तेरे को तो पता ही है.....। इस व्यवस्था में रटने वालों की ही अधिक पूछ है। यह तो 'हमें' पता है न कि हमारी बेटी कितना समझती है, ... समझ कर पढ़ती है। ..... कितनी ज़्यादा मेहनत करती है। देख लेना. ... इस रटने–वटने का अंत में जीवन में कोई काम नहीं। कभी न कभी तो लाग तुझे समझेंगे ही....।''

''हां,... और हमारे लिए यही बहुत है कि तुमने मेहनत की.... ईमानदारी से पढ़ीं... बड़ी लगन से पढ़ाई की... और इन विषयों की अपनी एक समझ बनायी।... और फिर सभी विषयों में तो पास है...।''

''पर पापा टीचर्स क्या कहेंगे! वो तो नहीं मानेंगे न...।''

''बेटा, इन टीचरों ने सारी जिंदगी तो तेरे साथ नहीं रहना न। वैसे कौन–सा तुम्हारा बहुत भला करते थे वो...। रोज तो तू बतलाया करती थी... ठीक से नहीं पढ़ाते, कुछ भी नहीं समझाते... क्लास में नहीं आते। वो थोड़ी–न कदर करेंगे तेरी समझ की... मेहनत की...। जो, कुछ भी, समझदार होंगे वे, देखना समझ जाएंगे कि इसमें तेरी कोई गलती नहीं...।''

''चल बेटा बस कर। अब खुश हो जा। देख, मैं कौन–सी मिठाई लायी हूं...।... अरे, नई किताबें नहीं लाने चलना है...।'' यह घर का दृश्य था।

पर इसी रिजल्ट पर, स्कूल–कॉलेज में मैं बिल्कुल भिन्न तरह की प्रतिक्रिया पाती थी। ...

''मुझे तुमसे काफी उम्मीद थी!''

''क्या हुआ, पेपर क्यों खराब किया तुमने. ..।''

''हिन्दी तो आसान है उसमें किसी के भी इतने आ जाते हैं।... साइंस में क्या हुआ!. .''

''सोशल साईंस तो तुम्हारा प्रिय विषय था न! ... उसमें क्या हुआ?''

'' ज़रूर तुम कुछ लिखना भूल गई होगी। प्रश्न तो ठीक से समझा था न!...''

''मैडम, मैंने तो अपनी तरफ से अच्छा ही किया था। पर ...।''

बहस से कोई फायदा न था। गुनहगार तो में ठहरायी जा चुकी थी। सारी बात कर लो, अंत में उंगली मेरी ओर ही उठनी थी. ..। तो फायदा क्या? ... सिर झुकाए सुनते जाओ। कभी–कभी कोई गैर–ज़िम्मेदार टीचर ऐसे सवाल करता; तो मन करता पलट कर पूछा जाए... ''आप ने कितना पढ़ाया था?''... ''आप कितना समझाते थे. ..!''... जितना हो पाया, वह भी अपने बल–बूते पर ही तो हो पाया। पर क्या कहती...। कहने का साहस नहीं था मुझमें। कहने का अधिकार जो नहीं था मुझको..।

'' मल्लिका, इस बार रेखा की भूगोल की किताब कितनी रोचक है न...! समय मिले तो सब मिलकर पढ़ेंगे।''

''हां, पापा, अच्छा मैं आपसे कुछ डिस्कस करना चाहती हूं...।... और फिर रोचक वार्तालाप शुरू हो जाता है। नाना किस्म के प्रश्न उठते हैं। मल्लिका भी खिंची चली आती हैं। सब मिलकर सोचते–विचारते हैं। कई किस्म की कल्पनाएं की जाती हैं. .. और फिर कुछ टॉपिक्स पर तो मानो बहस छिड़ जाती है... आज की ज्वलंत समस्याओं पर बातचीत चल पड़ती है।... कुछ समय बाद वहां से उठते हुए रेखा कहती है, ''अरे वाह! अब तो बहुत मज़ा आएगा भूगोल पढ़ने में।... मम्मी मेरा ग्लोब कहां है?...''

अगले दिन स्कूल में भूगोल के पीरियड में. ..। कौन–कौन किताब नहीं लाया है। खड़े हो जाओ।''...

''चालीस नम्बर हैं, तुम्हारे सोशल साईंस के पेपर में भूगोल के...। पूरे चालीस...। सोच लो, चालीस नम्बर मायने रखते हैं।. .. इसलिए शुरू से ध्यान दो...।''

''शार्ट प्रश्न–उत्तरों की तो एक अलग से

कॉपी बना लो।... और हर हफ्ते बाद तुम्हारा टेस्ट हुआ करेगा।''

''चलो, अब...। कोई जना खड़े होकर पढ़े।... कौन अच्छी रीडिंग करता है?...''

''अच्छा, अब देखो यहां ब्लेक बोर्ड पर...। समझो जरा...। पर इम्तिहानों में यह बनाना मत।''

''बस यहां, हां... इन लाइन से आगे ... हां... उस पैरे के आखिर तक मार्क कर लो। यह "Important" है।...''...

रेखा को लगा कि जो भूगोल कल उसका दोस्त बन गया लगता था, ...जिसपर घर में इतनी रोचक बातें हो रहीं थीं; वह अब न जाने कहां खो गया था?... किताब, कॉपी, Important Short Questions और इम्तिहानों आदि की बातों में छिपकर... वह भूगोल न जाने कहां खो गया था! आज, वही किताब (जो कल तक रोचक जान पड़ती थी) कितनी बेजान हो गई थी...! ...और घण्टी बजने के बाद, उसे बंद कर बस्ते में डाल देने पर राहत महसूस हुई।

''मल्लिका, मुझे रेखा की यह बात बहुत अच्छी लगती है। इसे सबकी चिंता है, सबका ख्याल है...। देखो, कैसे इसने उस दिन स्मिता को संभाला था... कितनी अच्छी तरह से समझाया था उसे...। बस पता नहीं कभी–कभी खुद ही डांवाडोल क्यों हो जाती है।''

''सच में... हमारी बेटी में कुछ खास खूबियां हैं...।''

''मम्मी, पता नहीं क्यों, सुलेखा मुझसे जलती है! ...जबकि आपको तो पता है न, मैंने कभी इस ढंग से नहीं सोचा। ये कुछ टीचर भी न ...हमारे आपसी रिश्तों में कभी–कभी खटास पैदा करते हैं। आज हिन्दी वाले सर जो लगे थे तुलना करने...।''

''इन टीचरों को भी चैन नहीं है। ...निरंतर एक होड़ में बच्चों को लगाए रखना...।''

पर स्कूल में जो अलग ही माहौल होता था। अलग ही शब्द होते थे... ''देखो, इस बार हम 'डी' सेक्शन को पीछे छोड़ेंगे...।''

''इस बार गणित में कौन टॉप करेगा...''

''इस प्रतियोगिता में हमारे हाऊस को हर हाल में प्रथम आना होगा...''

''देखें, कौन यह सवाल पहले हल कर पाता है...''

''तुम्हारे नम्बर कितने हैं? ... और उसके कितने हैं?...''

''स्नेहा वॉलीबॉल में इस बार उस सेक्शन की लड़कियों को हराना होगा... सारी निगाहें तुम्हीं पर हैं...''

भाषा ही अलग थी स्कूल–कॉलेज की... माहौल ही अलग था...। घर का अलग... स्कूल–कॉलेज का अलग...। धीरे–धीरे रेखा भी दो तरह की होती गई...। घर की रेखा... और स्कूल की रेखा...। वह अपनी असली पहचान खोती गई...। घर में वह एक इंसान थी... जिसके अपने विचार थे... अपनी भावनाएं थीं... अपनी सोच, अपनी इच्छाएं थीं। ... और स्कूल या कॉलेज में वह एक व्यवस्था रूपी मशीन का पुर्ज़ा थी, ...जिसे चलना था... जैसे चलाया जाए, वह सब करना था– जो कराया जाए... अपने को फिट रखना है, उस मशीन में...। (एक मौके पर कॉलेज की हमारी प्रिन्सिपल ने, कहा था... "College is running like a well-oiled machine"...। वास्तव में लगा यह मशीन ही था... बल्कि पूरी शिक्षा व्यवस्था एक मशीन ही लगी...!)

रेखा के घर की भाषा थी–

''मेरा विचार है कि...।''

''मेरा सोचना यह है कि...।''

''अगर हम ऐसा करके देखें तो...।''

''आपका क्या सोचना है?...।''

''मैं सोचती हूं...।''

''मेरे मन में यह बात आयी कि...।''

''मम्मी, कहो आपकी क्या राय है...।''

''नहीं, मेरा मन नहीं कर रहा। अगर इसके दूसरे पहलू पर विचार करें तो...।''

''मेरे को इस बारे में कुछ अलग–सा लगता है...।''

''मुझे आपके विचार पसन्द आए।... मैं ढंग से सोचकर देखूंगी... थोड़ा वक्त तो लगेगा न ...। मेरे लिए यह नई सोच है...।''

रेखा के स्कूल की भाषा थी–

''यस (yes) मैडम''

''नो मैडम''

''मैंने कर लिया सर...।''

''सर प्लीज...।''

''ओ.के. सर...।''

''सॉरी सर, आगे से ऐसा नहीं होगा।''

''अब आप जैसा कहें...।''

''ठीक है सर...।''

...और बस आदेशों का पालन। न ज्यादा कभी पूछा गया और न कभी खास बताने का मौका मिला बच्चों को... अपनी इच्छाएं ... अपनी राय, अपने विचार, अपना मत, अपनी भावनाएं...। यंत्रवत बस, ''आदेश–पालन''...।

आदेश या आज्ञा की अवहेलना या आदेश पालन में चूक का अर्थ था– डांट या सजा या मार... टीचर की किसी भी रूप में नाराजगी प्रकट होती...। ऐसा न चाहो, तो आंख मूंद कर आज्ञापालन करते जाओ...। अपने दिल और दिमाग के ज्यादा इस्तेमाल की जरूरत नहीं...। कान से सुनो और फिर सुनी हुई बात में दिए सही–सही आदेश को पहचान लो और फिर करो उसका पालन...!

ऐसा करते–करते धीरे–धीरे इच्छाएं दब गईं, खुद की सोचने–विचारने की क्षमताएं क्षीण होती गईं, एक इंसान के रूप में अपनी पहचान तक हम खोते गए... मशीन का पुर्जा बनते गए... अपने आप से बिछड़ते गए...। और ऐसे में अचानक स्कूल या कॉलेज में कभी कोई पूछ बैठता हमारे विचार, हमारी राय, हमारी सोच...! दिमाग बिल्कुल खाली लगता था, ऐसे में...। कुछ सूझता न था।... दिलो–दिमाग शून्य से जान पड़ते थे, ऐसे में! समझ नहीं आता था कि क्या कहें...! ... और आज्ञापालक बच्चे मुंह झुकाए बगले झांकने लगते थे। ऐसे में, लीक से कुछ हटकर चलने वाली, बच्चों की राय या उनके विचार जानने की कुछ उत्सुकता रखने वाली वह टीचर खीझ उठती थी या हैरान होती थी, कुछ समझ न पाती थी कि अपने सामने बैठे तीस–चालीस हाड़–मांस के पुतलों में जान कैसे भरे, कहां से और कैसे शुरू करें... उनको समझना!

स्कूल पास या फेल : प्रकाशक – भारत डोगरा सोशल चेंज पेपर्स, नई दिल्ली से साभार।

आदरणीय गुरुजी

इटली के एक छोटे ग्रामाचंल के 8 बच्चों ने मिलकर एक पुस्तक लिखी जिसका नाम है अध्यापक के नाम पत्र। इसमें जिन समस्याओं को उठाया गया है, वे समस्याएं विकासशील दुनिया के तमाम देशों के असंख्य अभिभावकों को भी हैं। इटली के गरीब मां–बाप पर इस पुस्तक का जबर्दस्त असर हुआ है। इस पुस्तक की विश्वव्यापी लोकप्रियता का कारण इसकी यही विषयवस्तु है जिसमें गरीब जनता के सरोकार व्यक्त हुए हैं। पुस्तक में इटली के 'मध्यवर्गोन्मुखी' शिक्षाव्यवस्था के नैतिक आधार को चुनौती दी गई है। उस व्यवस्था के अंतर्विरोधों को अत्यंत संयत और व्यवस्थित तरीके से यहां पर उद्घाटित किया गया है।

यह पुस्तक दुनिया के प्रत्येक भाग में रहने वाले गरीबों को अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति सचेत करती है। इसमें जिस संयत और शालीन क्रोध की अभिव्यक्ति हुई है, वह किसी भी देश या प्रदेश के मज़दूर या किसान का क्रोध हो सकता है। उसको साफ दिखता है कि हर स्कूल में मध्यवर्गीय परिवारों के बच्चे उपेक्षा का शिकार होते हैं। यहां प्रस्तुत है इस पुस्तक का एक अंश–

आप मुझे या मेरे नाम को भूल गई होंगी। आपने मेरे जैसे न जाने कितनों को फेल किया है।

परंतु मैं अक्सर आपको, और दूसरी अध्यापिकाओं को, उस संस्था को जिसे आप स्कूल के नाम से पुकारते हैं, और उन लड़कों को जिन्हें आप फेल करती हैं, याद करता हूं।

आप फेल करके हम लोगों को सीधे खेतों में या फैक्ट्रियों में धकेल कर हमें बिल्कुल भूल जाती हैं।

दो वर्ष पहले जब मैं माध्यमिक कक्षा में था, तब आपको देखकर मुझे बहुत डर लगता था। सच पूछिए तो मैं शुरू से ही थोड़ा झेंपू किस्म का हूं। जब मैं बहुत छोटा था तो मैं अपनी नजर सदा जमीन की ओर रखता था। मैं दीवार के किनारे सटा हुआ चलता था, शायद यह मेरे या मेरे परिवार की, एक प्रकार की बीमारी है। मेरी मां भी इसी प्रकार की है कि तार देखते ही घबरा जाती है। मेरे पिता सब कुछ सुनते और समझते हैं, पर बोलते कम हैं।

बाद में मैंने सोचा कि झेंपना शायद हमारी पहाड़ी समुदाय का रोग है। मैदानी इलाकों के किसानों में कहीं अधिक आत्मविश्वास होता है। शहर के मजदूर की तो बात ही छोड़िए।

ध्यान से देखने पर अब मुझे पता चला कि सारी महत्वपूर्ण नौकरियां तथा संसद की सारी सीटें, बड़े घर के लड़कों को ही मिलती हैं–मजदूर देखते ही रह जाते हैं।

अतः मजदूर भी हम लोगों की तरह हैं। गरीब लोगों का संकोच बहुत प्राचीन है और मैं उसके रहस्य को समझा नहीं सकता, यद्यपि मैं स्वयं गरीबी से घिरा हुआ हूं। शायद यह न तो किसी प्रकार की कायरता है और न किसी प्रकार की वीरता। यह केवल आत्माभिमान की कमी है।

प्रथम पांच वर्षों में राज्य द्वारा मुझे निम्न कोटि की शिक्षा दी गई। एक कमरे में पांच कक्षाएं लगती थीं। राज्य से प्राप्य मेरी शिक्षा का यह पांचवा भाग था।

यह प्रणाली अमेरिका में भी प्रयोग की जाती है, जिसके द्वारा गोरे और कालों का भेद उत्पन्न किया जाता है–शुरू से ही गरीबों के लिए घटिया किस्म के स्कूलों को उपलब्ध कराना।

इन पांच वर्षों की प्राथमिक शिक्षा के बाद मुझे तीन वर्ष की और शिक्षा का अधिकार था। सच तो यह कि संविधान के अनुसार शिक्षा प्राप्त करना मेरे लिए बाध्यकारी था। परंतु मेरे गांव विकियासें में अभी तक कोई माध्यमिक स्कूल नहीं था। बोरगो जाना काफी कठिन था। कुछ लोगों ने वहां जाने का प्रयास किया था और उसके लिए काफी धन भी खर्च किया था, परंतु उन्हें फेल करके कुत्तों की तरह दुत्कार दिया गया था।

मेरे परिवार को मेरी अध्यापक ने यही कहा था कि मेरे ऊपर पैसा खर्च करना व्यर्थ है। 'इसे खेत में काम करने के लिए भेज दो। यह पढ़ नहीं सकता'–उसने मेरे पिता से कहा।

मेरे पिता ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे सोच रहे थे, 'यदि हम बारबियाना में रहते, तो यह अवश्य पढ़ाई में सफलता प्राप्त करता।'

बारबियाना में सभी लड़के स्कूल जाते थे। यह पादरी का स्कूल था। प्रातः तड़के से अंधेरा होने तक–चाहे गरमी हो या जाड़ा। वहां कोई लड़का ऐसा नहीं था जो पढ़ाई के लिए 'अयोग्य' समझा गया हो।

परंतु हम तो दूसरे गांव में रहते थे जो बारबियाना से काफी दूर था। मेरे पिता तो सारी आशा छोड़ चुके थे। पर तभी उन्हें सान मारटिनों के एक लड़के का पता चला जो बारबियाना जाने वाला था। मेरे पिता ने हिम्मत दिखाई और वहां जाकर सब बातें पता करने का निश्चय किया।

जब वे वापस लौटकर आए तो मैंने देखा कि वे मेरे लिए एक टार्च, एक खाना रखने का डिब्बा और बर्फ पर चलने के लिए जूते खरीद कर लाए हैं।

पहले दिन वे मुझे स्वयं अपने साथ लेकर गए। हमें दो घंटे रास्ते में लगे क्योंकि हम लोग हंसिया से रास्ता साफ करते जा रहे

थे। बाद में मैं एक घंटे से थोड़े ही अधिक समय में इस रास्ते को पार करना सीख गया।

इस पूरे रास्ते में मुझे केवल दो मकान मिलते थे। उनकी खिड़कियां टूटी हुई थीं और वे हाल ही में खाली करके छोड़ दिए गए थे। कभी–कभी रास्ते में सांप को देखकर मैं भागने लगता था या एक पागल आदमी के कारण भी जो एक पहाड़ी पर अकेला रहता था और दूर से मेरे ऊपर चिल्लाता था। मैं तब ग्यारह वर्ष का था। आप होतीं तो डर के मारे आपके तो प्राण ही निकल जाते। आपने देखा–हम सब अपने–अपने ढंग से डरपोक हैं। अतः जहां तक डरने का संबंध है, हम बराबर ही हैं।

परंतु हम बराबर तभी हो सकते हैं जब हम दोनों अपने घर पर ही रहें। या आप हमारे घर पर आकर हमारी परीक्षा लें। परंतु आपको तो ऐसा करना नहीं पड़ता है।

जब में बारबियाना पहुंचा तो वह स्कूल की तरह नहीं लगता था। न तो कोई अध्यापक था, न कोई डेस्क था, न काली तख्ती थी और न कोई बेंच थी। बस बड़ी–बड़ी मेजें रखी थीं जिनके चारों ओर हम लोग पढ़ते थे और वहीं पर खाते भी थे।

प्रत्येक किताब की बस एक प्रति थी। सब लड़के उसे घेरकर खड़े हो जाते थे। इस पर ध्यान ही नहीं जाता था कि उन्हीं लड़कों में से एक थोड़ा आयु में बड़ा था और वही पढ़ा रहा था।

इन पढ़ाने वाले 'अध्यापकों' में से सबसे बड़ा सोलह वर्ष का था। सबसे छोटा बारह वर्ष का था और उसे देखकर मेरा मन प्रशंसा से भर उठा। मैंने शुरू से ही तय कर लिया कि मैं भी आगे चलकर पढ़ाऊंगा।

वहां पर भी कई प्रकार की कठिनाइयां थीं। अनुशासन और झगड़े भी थे। कभी–कभी लगता था कि यहां लौटकर न आया जाए।

एक लड़का था जो अति साधारण परिवार का था। उसकी बुद्धि मंद थी और वह आलसी था। परंतु उसके साथ ऐसा व्यवहार किया जाता था मानो वही अध्यापकों का प्रिय पात्र हो। जैसे आप लोग अपनी कक्षा में सर्वोत्तम विद्यार्थी से व्यवहार करती हैं, वैसा उसके साथ किया जाता था। ऐसा प्रतीत होता था मानो स्कूल उसी के लिए बनाया गया है। जब तक वह नहीं समझ लेता था, दूसरे लड़के आगे नहीं पढ़ सकते थे।

वहां कभी छुट्टी नहीं होती थी–इतवार को भी नहीं। परंतु इससे हमें कोई परेशानी नहीं थी। छुट्टी के दिन हमें मजदूरी करनी पड़ती थी जो स्कूल जाने से अधिक बुरा होता। परंतु यदि वहां पर कोई मध्य वर्ग के सज्जन आते थे तो वे इस बात का बतंगड़ बनाते थे।

एकबार बड़े प्रोफेसर बोले, 'फादर मिलानी, आपने कभी बच्चों को शिक्षित करने की कला का अध्ययन नहीं किया है। डाक्टर पोलियान्स्की ने लिखा है कि बच्चों के लिए खेलकूद का बहुत शारीरिक, मनोवैज्ञानिक...'

प्रोफेसर साहब हम लोगों की ओर देखकर नहीं बोल रहे थे। विश्वविद्यालय के प्रोफेसर, जो शिक्षा का विषय पढ़ाते हैं, उन्हें स्कूल के बच्चों की ओर देखने की आवश्यकता नहीं होती है। उन्हें तो उसके बारे में सब कुछ रटा हुआ है, जैसे हमें पहाड़े रटे हुए हैं।

जब वे चले गए तो लूसियो ने, जिनके घर पर 36 गाएं हैं, कहा, 'गाय का गोबर उठाने से तो स्कूल आना ही अच्छा है।'

आपके स्कूलों के सामने वाले दरवाज़ों पर इस वाक्य को लिखवाया जा सकता है। लाखों किसानों के बच्चे इसका समर्थन करने को तैयार हैं। आप कहते हैं कि लड़कों को स्कूल बिल्कुल अच्छा नहीं लगता है और उन्हें खेलने से प्रेम है। हम किसानों से आपने नहीं पूछा, लेकिन लाखों–करोड़ों हम जैसे हैं। संसार के प्रत्येक दस बच्चों में से छह लूसियो की ही तरह सोचते हैं। बाकि के चार क्या चाहते हैं, यह हम नहीं जानते।

आपकी सारी संस्कृति इसी पर आधारित है–मानो आप ही सारी दुनिया हैं।

एक वर्ष बाद में अध्यापक बन गया– हफ्ते में साढ़े तीन दिन के लिए। मैं माध्यमिक कक्षाओं के प्रथम वर्ष के विद्यार्थियों को भूगोल, गणित, फ्रेंच भाषा पढ़ाता था। एटलस देखने के लिए, या सही–बटे के सवालों को समझने के लिए किसी डिग्री की आवश्यकता नहीं होती।

यदि पढ़ाने में कभी मैने कोई गलतियां कीं तो उससे कोई बहुत बड़ा नुकसान नहीं हुआ। लड़कों को तो उससे राहत ही मिली। हम लोग आपस में मिलकर उनका हल निकालते थे। बिना किसी चिंता और डर के घंटों निकल जाते थे। जिस ढंग से मैं अपनी कक्षा चलाता था, वैसे आप नहीं चला सकतीं।

अघ्यापन के साथ–साथ मैं कई बातें भी सीख रहा था, जैसे– दूसरों की समस्याएं भी मेरे समान हैं। यदि उन समस्याओं से हम दोनों साथ–साथ पार पा लें तो यह अच्छी राजनीति कही जाएगी। परंतु केवल अपनी ही समस्याओं का निदान स्वार्थ होगा।

ऐसा नहीं है कि मेरे अंदर स्वार्थ नहीं था। परीक्षा के दिनों में मुझे इच्छा होती थी कि ये छोटे बच्चे भाड़ में जाएं और मैं अपनी पढ़ाई करूं। मैं भी आपके विद्यार्थियों की तरह एक लड़का था परंतु बारबियाना में ऐसी बात मैं सोच भी नहीं सकता था और न दूसरों से कह सकता था। मुझे इच्छा न होने पर भी उदार होना पड़ता था।

आपको शायद यह एक बहुत छोटी बात प्रतीत हो परंतु आप तो अपने विद्यार्थियों के लिए इतना भी नहीं करतीं। आप उनसे किसी चीज़ के लिए नहीं कहतीं। आप तो उन्हें केवल अपने बूते पर आगे बढ़ने को छोड़ देती हैं।

–लेखक बारबियाना स्कूल का एक बच्चा है जिसकी उम्र करीब 15 वर्ष है।

अध्यापक के नाम पत्र : प्रकाशक ग्रंथ शिल्पी से साभार।

रमेश दवे

इतना सब होते हुए भी एक बात कहता हूं कि लोग कुछ भी कहें, मैं कैसा भी होऊं, गरीब रहूं या अमीर, उपेक्षित रहूं या उदासीन, खंडहर रहूं या भव्य इमारत, मैं मर नहीं सकता, मैं कभी मरूंगा भी नहीं। जब तक समाज बच्चे पैदा करता रहेगा, मैं जिंदा रहूंगा।

मैं हूं स्कूल, मेरा दर्द न जाने कोई

मैं हूं स्कूल। मेरा दर्द है। मैं अपनी आत्मकथा कहना चाहता हूं। मेरी कथा तो दर्द की दास्तान है। मेरी सुनता कौन है? मुझे ही सबकी सुनना पड़ती है।

मैं सोचता हूं हर माता–पिता अपने बच्ची–बच्चे की तो इतनी चिंता करते हैं। उसे स्वच्छ और स्वस्थ रखते हैं। साफ धुले कपड़े या गणवेश, अगर वे गरीब से गरीब बच्चों कें पास हैं तो, पहनाते हैं। उसे अपनी औकात के मुताबिक बस्ता लाकर देते हैं, यदि किताबें मुफ्त नहीं मिलीं तो गरीब से गरीब मां–बाप किताबें, कापियां, पेन, पेंसिल सब लाकर देते हैं। हर मां–बाप की इच्छा रहती है कि उसके बेटे–बेटी स्कूल जाएं तो सज–धज कर। मगर मेरा दुख तो देखिए, मेरे पास ताज़े और प्यारे बच्चे आते हैं, मगर मैं वही बासी स्कूल हूं। जगह–जगह से उखड़ा, टूटा। कच्चा या पक्का प्लास्टर झड़ा–झड़ा। मैली–कुचैली दीवारें और मेरा चेहरा इतना बैरौनक कि देखने वालों को ऐसा लगे जैसे मैं बच्चों का स्कूल न होकर कोई कब्रिस्तान होऊं।

आप सब बच्चों की चिंता करते हैं, उनके भविष्य की चिंता करते हैं, मेरी उपलब्धियों को अपनी उपलब्धि बताकर चुनाव जीतती हैं और हर कोई कहता है कि स्कूल को सुधारना होगा या स्कूल को सुधरना होगा। आखिर मुझे समझते क्या हैं लोग? क्या मैं बच्चों को बिगाड़ता हूं? क्या मैं बच्चों को कुछ नहीं सिखाता, पढ़ाता या लिखता? अगर मेरे आसपास या मेरे अंदर गंदगी की तो किसने? अगर मेरा पर्यावरण स्वच्छ नहीं हैं, तो उसे अस्वच्छ किसने बनाया? अगर मेरे पास ठीक से बैठने के कमरे नहीं हैं, टाटपट्टी या दरी नहीं हैं, तो मैं उन्हें कहां से लाऊं। अगर मेरा फर्श और दीवारें उखड़ी हुई हैं, तो यह हालत मेरी कैसे हुई? मेरे शरीर पर घाव ही घाव हैं। बरसात में इन घावों में पानी की तरह मेरे अंग–अंग से फूट पड़ता है, मैं दर्द से व्याकुल हो जाता हूं। सर्दी में मेरी टूटी–फूटी दीवारों, खिड़कियों और दरवाजों से शीतलहर प्रवेश कर मेरा अंग–अंग कंपा देती है। मेरे अंदर कई जगह धूप को आने की इजाजत नहीं। गरमी में अंदर आग सी जलने लगती है। मुझे एक भट्टी में बदल दिया जाता हे। मैं क्या–क्या सहता हूं। मौसमों की बेहरमी, समाज और सरकार की बेरहमी और बेरूखी और शिक्षकों की उदासीनता। इसलिए मैं उदास हूं। लोग चाहते हैं कि मैं मुस्कान का स्कूल बनूं, खुशी का स्कूल बनूं, खेल का स्कूल बनूं, मगर बनूं तो कैसे? मेरा रूप, रंग सब कुछ तो आपने छीन लिया और आप कहते हैं कि मैं सुंदर लगूं, मगर कैसे? आपने मेरे चलने का ढंग बिगाड़ दिया और मुझे विकलांग कर दिया और आप चाहते हैं कि मैं केवल चलूं ही नहीं बल्कि दौडूं। मुझे तरह–तरह की बेड़ियां पहनाकर आप मुझसे प्रतियोगिताओं की रेस में घोड़े की तरह दौड़ने को कहते हैं?

क्या है समाज और सरकार? सबको अपनी–अपनी चिंता है मगर मेरी चिंता किसी को नहीं। नेता को अपनी चिंता, सांसद, विधायक, पार्षद, पंच, सरपंच को अपनी चिंता, मां–बाप को अपनी चिंता और बच्चों की चिंता केवल इतनी है कि वे ठीक से खाते–पीते घरों में खा लें, पी लें, अच्छे कपड़े पहन लें और पढ़ने चले जाएं। जब सब अपनी चिंता में व्यस्त हैं, तो मेरी चिंता कौन करें? सबके अपने–अपने स्वार्थ हैं, मेरी सेवा कौन करें? सब अपनी–अपनी ताकत बढ़ाने और आजमाने में लगे हैं तो मेरी ताकत कौन बढ़ाए? मुझे तो हर कोई कमज़ोर रखना चाहता है कि मैं अपने लिए किसी बात पर लड़ ही नहीं पाऊं। मेरे पास बच्चे और अध्यापक होते हैं, तो मैं स्कूल होता हूं, मेरे यहां चुनाव केन्द्र होते हैं तो मैं चुनावी अखाड़ा जो जाता हूं। मेरे यहां सेंसस कार्यालय बनता है, तो मैं एक दफ्तर में बदल जाता हूं। मेरे यहां नेत्र–शिविर या पोलियो–शिविर लगता हैं तो मैं एक अस्पताल हो जाता हूं। मेरे यहां जानवर आकर खड़े हो जाते हैं, तो मैं कांजीहाउस की तरह लगने लगता हूं। मेरे आसपास गुंडे–बदमाश जब जुआ खेलते हैं, यौन अपराध करते हैं, चोरी करते हैं, तो मैं अपराधियों की बस्ती में बदल जाता हूं। मेरे यहां पुलिस आती हैं, तो मैं एक थाना हो जाता हूं। मेरे यहां

पर अफसर, निरीक्षक, नेता और प्रशासक आते हैं तो मैं खाने–पीने की एक होटल में बदल जाता हूं। समाज, शासन, प्रशासन किसी को भी मेरा स्कूल बना रहना पसंद नहीं। ऐसा लगता है, जैसे पूरा समाज कई तरह के मुखौटे लेकर घूम रहा है और मैं एक ऐसे अभिनेता की तरह हूं जिसे मुखौटा लगाकर कहा जाता है कि इस मुखौटे के लायक रोल करो।

कोई कहता है कि मुझे भंग कर दो या मिटा दो। कोई कहता है मैं मर गया हूं। कितनी खराब बातें बोलते हैं मेरे बारे में। अपने जिंदा बच्चे तो सब मेरे पास भेजते हैं और मुझे मरा हुआ कहते हैं? मैं कैसा भी हूं मगर हूं तो एक ऐसी जगह, जिस पर आज भी लोगों को विश्वास है कि उनके बच्चे यहां पढ़–लिख जाएंगे। यह बात अलग है कि मेरे कई रूप हो गए हैं, मेरा भी अलग–अलग वर्ग बन गया हैं, मेरे साथ भी पक्षपात है, लेकिन मैं क्या करूं। मैं वही होता हूं जो समाज मुझे बनाता है। जैसा मुझे बनाया जाता है, उससे बेहतर मैं समाज को लौटाता हूं। समाज मुझे अनपढ़ बच्चे देता हैं, मैं उन्हें पढ़ा–लिखाकर लौटता हूं। समाज मुझे खराब से खराब भवन देता है, मैं उसमें भी अच्छी से अच्छी शिक्षा देने की कोशिश करता हूं। समाज मुझे घटिया कहे जाने वाले शिक्षक देता है, मैं उनसे भी अच्छे से अच्छा काम ले लेता हूं और कोई यहां यह नहीं कहता कि शिक्षक खराब है इसलिए स्कूल को शिक्षक रहित कर दो। शिक्षक कम हों तब भी मैं पढ़ाता–लिखाता हूं।

मेरे दर्द की दास्तान बहुत लंबी है। क्या–क्या सुनाऊं। अगर सरकार और समाज मुझे कमजोर बनाए रखना चाहते हैं, मैं आपको ताकतवर बच्चे कैसे दूं। अगर मेरी ही हड्डियों में जान नहीं है तो मैं एक व्यायामशाला का रोल अदा कैसे करूं? अगर मेरे अंदर से आनंद के झरने नहीं फूटते, तो मैं बच्चों को वह आनंद कैसे दूं जिसकी मांग सारे शिक्षाविद मुझसे करते हैं? अगर मेरी आंखों में आंसू हैं, तो बच्चों के आंसू कैसे पोछूं।

इतना सब होते हुए भी एक बात कहता हूं कि लोग कुछ भी कहें, मैं कैसा भी होऊं, गरीब रहूं या अमीर, उपेक्षित रहूं या उदासीन, खंडहर रहूं या भव्य इमारत, मैं मर नहीं सकता, मैं कभी मरूंगा भी नहीं। जब तक समाज बच्चे पैदा करता रहेगा, मैं जिंदा रहूंगा। मेरे दर्द की पूरी कथा तो बहुत बड़ी है। इसे किसी वक्त अलग से एक पूरी आत्मकथा लिखकर कहूंगा? आप स्कूल नाम न देकर कोई भी नाम दे दीजिए, मगर हर नाम में, हर देह में धड़कन तो मेरे ही नाम होगी। अगर आपने मेरा दर्द बांच लिया और मुझे दर्द से मुक्त कर दिया तो वचन देता हूं कि मैं दुनिया भर से दर्द मिटा दूंगा।

मैं इस तरह नहीं पढ़ूंगी : प्रकाशक – ग्रंथ शिल्पी से साभार।

बच्चों के लिए स्कूल में अच्छा पर्यावरण हो। बच्चों को विद्यालय में विचार करने की स्वतंत्रता हो या दूसरे स्रोतों से सीखने की व्यवस्था हो ताकि वे अपने ज्ञान में वृद्धि कर सकें। बहुत से स्कूल ऐसे हैं जिनमें बच्चों को समाज की समस्याओं से अवगत होने का मौक़ा मिलता है।

स्कूल क्यों?

स्कूल के बारे में मेरे दो एक्स्ट्रीम विचार हैं। पहले विचार के अनुसार वर्तमान में स्कूल मृतप्राय हो गए हैं और इन्हें बंद कर देना चाहिए। क्योंकि इनका समाज के अहम मुद्दों से कोई सरोकार नहीं है। वर्तमान में स्कूलों को समाज की चिंता नहीं है और न ही वे समाज की किसी समस्या को हल करते हैं। समाज से इनका कोई लेना–देना नहीं है। स्कूल समाज के सपनों को साकार करने में भी कोई भूमिका नहीं निभाता। स्कूल और समाज की दूरियां जितनी बढ़ती गई इस विचारधारा को बल मिलता गया।

परंतु दूसरा पक्ष यह भी है– मैं नहीं मानता कि स्कूल निकम्मे हैं। क्योंकि मैं स्वयं स्कूल में रहा हूं। मैं नहीं चाहता कि स्कूल बंद हो बशर्ते कि उन्हें सही ढंग से चलाया जाए। यदि किसी स्कूल में बच्चे तनाव में रहते हैं, सीखने–सिखाने की प्रक्रिया को भार समझते हैं, बच्चों में दण्ड का भय निरंतर बना रहता है, तो बच्चे की सारी शक्तियां अध्यापक की मार से बचने में लगी रहती है तथा जहां बहुत सी निरर्थक बातों को रटने के लिए बाध्य कर दिया जाता है तो ऐसे स्कूलों का कोई औचित्य नहीं है। परंतु जहां सीखने की प्रक्रिया सहज हो, बच्चों को सोचने की स्वतंत्रता मिले, किसी चीज़ को खोजने, परखने की छूट हो और जहां बच्चे अपने निष्कर्ष निकालें, समाज से संपर्क बनाने की स्वतंत्रता मिले, बच्चा समाज की समस्याओं को जान सके ऐसे स्कूलों की आवश्यकता हैं और सदा रहेगी।

एक समय जब मैं प्रिंसिपल था उस दौरान का अनुभव सुनाता हूं। मेरे साथ एक अंग्रेज़ मेहमान स्कूल देखने आए। उन्होंने देखा बच्चे मेरे साथ खुल कर बाते कर रहे थे। उस अंग्रेज मेहमान को बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा बच्चों को प्रिंसिपल के सामने जाने के नाम से ही पसीने छूटते हैं और यहां बच्चे कितनी आसानी से आपसे बातें कर रहे हैं।

बच्चे स्कूल से डरते हैं क्योंकि स्कूलों में दबावपूर्ण वातावरण होता है। वे परीक्षा से भयभीत रहते हैं। मैं जिस स्कूल में प्रिंसिपल था वहां तीसरी तक कोई परीक्षा नहीं होती थी। उसके बाद भी यदि परीक्षा में कोई प्रश्न नहीं आता तो छात्र अध्यापक से पूछ लेते थे कि कैसे करें? और अध्यापक उनको मदद भी कर देते थे। कहने का तात्पर्य छोटे बच्चों को परीक्षा का कोई भय नहीं होता था। वर्तमान में बच्चा स्कूल के पहले दिन से ही परीक्षा से आतंकित रहता है।

अपना एक और अनुभव सुनाता हूं। एक बार मैं एक स्कूल में प्रेक्टिस टीचिंग सुपरवाइज़ करने गया। वहां मैंने एक नज़ारा देखा। एक अध्यापक ने कक्षा में आते ही बग़ैर किसी कारण के तीन–चार बच्चों को बेंत से मार दिया। बाद में मैंने उन अध्यापक से पूछा कि आपने बग़ैर किसी कारण के बच्चों को क्यों मारा? तो अध्यापक ने कहा कि– मैं रोज़ाना स्कूल आते ही चार–पांच बालकों को ऐसे मार देता हूं इससे सभी बच्चे अनुशासन में रहते हैं।

बच्चों का स्कूल में आने से कतराने का अन्य कारण स्कूलों की पढ़ाई में रस नहीं आना है। जिस तरीक़े से पढ़ाया जा रहा है उससे बच्चों को घुटन होती है। कक्षा में अध्यापक की बेंत का डर है। किसी से कुछ बोलना नहीं है। सीधे, मुंह पर अंगुली लगाकर बैठना है। हमारे जीवन में जब हम किसी मुद्दे का हल निकालते हैं तो आपस में बात करके एक–दूसरे से पूछकर ही किसी हल पर पहुंचने की कोशिश करते हैं। फिर हम बच्चों को इधर–उधर देखने, बात करने और अपने साथियों से विचार विमर्श करने पर क्यों रोकते हैं?

बच्चों के लिए स्कूल में अच्छा पर्यावरण हो। बच्चों को विद्यालय में विचार करने की स्वतंत्रता हो या दूसरे स्रोतों से सीखने की व्यवस्था हो ताकि वे अपने ज्ञान में वृद्धि कर सकें। बहुत से स्कूल ऐसे हैं जिनमें बच्चों को समाज की समस्याओं से अवगत होने का मौक़ा मिलता है। स्कूलों में बच्चों को पर्यावरण और प्रकृति, पेड़–पौधों, पशु–पक्षियों, नदी–नालों के अवलोकन और निरीक्षण का मौक़ा दिया जाता है और बच्चे इसमें काफ़ी रुचि लेते हैं। जब बच्चा खुद कहे कि आज छुट्टी क्यों? आज स्कूल क्यों नहीं जाना है? इसका मतलब है कि बच्चों को स्कूल में आनंद आता है।

स्कूलों को समाज की वर्तमान समस्याओं पर विचार करना चाहिए। जैसे कश्मीर की समस्या या आतंकवाद की समस्या। इस पर क्या कभी किसी स्कूल या विश्व विद्यालय में गंभीरता से विचार हुआ है कि राजस्थान के मरूस्थलीय इलाके में आजकल बाढ़ क्यों आ रही है? क्या इस पर कभी किसी भूगोलवेत्ता, भूगर्भवेत्ता या मौसम वैज्ञानिक ने बच्चों के साथ विचार किया? जब तक हम समाज की समस्याओं से मुंह मोड़ेंगे, समाज से कटे रहेंगे, हमारा यही हश्र होगा।

ए.बी. फाटक सेवानिवृत प्राचार्य, एस.जी.के. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, जोधपुर। वर्तमान में सक्रिय रूप से शिक्षा के सरोकारों में संलग्न। यह लेख ए.बी. फाटक से गिरीश शर्मा एवं कुमार अनुपम द्वारा चर्चा के आधार पर तैयार किया गया है।

स्कूल बनाम लर्न टू लिव टूगेदर

मेरे हिसाब से स्कूल की निगाह भविष्य की ओर होनी चाहिए। स्कूल का काम केवल किताबें पढ़ाना, पास–फेल करना, नौकरी के लिए तैयार करना ही नहीं है वरन बच्चों को भविष्य के लिए तैयार करना है। भविष्य में उन्हें किन कौशलों की जरूरत होगी, का निर्धारण करना तथा उनसे बच्चों को लैस करना है।

स्कूल का नाम आते ही मुझे अपना स्कूल याद आता है। मैंने अपनी पढ़ाई विद्या भवन में पूरी की है। मैंने जो वहां सीखा वह समूह में कार्य करना। वहां समूह जीवन के लिए काफी प्रयास किए जाते हैं। वह चाहे खेल का मैदान हो, केम्प हो, वनशाला, वर्कशाप हो, बच्चे साथ–साथ खेलते हैं, खाते हैं, काम करते हैं और पढ़ते हैं।

मेरे हिसाब से स्कूल की निगाह भविष्य की ओर होनी चाहिए। स्कूल का काम केवल किताबें पढ़ाना, पास–फेल करना, नौकरी के लिए तैयार करना ही नहीं है वरन बच्चों को भविष्य के लिए तैयार करना है। भविष्य में उन्हें किन कौशलों की जरूरत होगी, का निर्धारण करना तथा उनसे बच्चों को लैस करना है। सबसे महत्वपूर्ण कार्य जो स्कूल को करना चाहिए वह है साथ में रहना सीखाना (लर्न टू लिव टूगेदर)। स्कूल में बालक के पूरे दिन का समय एक ऐसे वातावरण में बीते जहां उसे कुछ करके सीखने को मिले।

जितनी बुराइयां संसार में हैं वे सभी मानव सोच की देन है। हमें शिक्षा के माध्यम से मानव की सोच को बदलना होगा। बच्चे के मन में संतुलन एवं शांति की नींव डालनी पड़ेगी। आतंकवाद भी यहीं से नियंत्रित होगा। शांति की स्थापना बच्चे को केवल किताब का पाठ पढ़ाने से नहीं होगी। इसके लिए हमें गांधी द्वारा सुझाया गया तरीका 'काम व शिक्षा का समन्वय' अपनाना होगा जिससे समन्वित एवं संतुलित व्यक्तित्व का निर्माण हो सके। गांधी ने कहा है कि जब बच्चा कोई काम करता है तो अपनी ऊर्जा को किसी सृजनात्मक काम में लगाता है तथा उत्पादन की खुशी उसे धैर्यपूर्वक बांधे रखती है। बहुत सी चीज़ों को सीखने के साथ ही वह अपने इमोशन को कंट्रोल करना सीख जाता है। वे कहते थे बच्चे में जिन जीवन कौशलों का हमें विकास करना है, केवल उनका पाठ पढ़ाना ही पर्याप्त नहीं है, उन्हें व्यवहार में भी लाना होगा, तथा अभ्यास के अवसर स्कूल में प्रदान करने होंगे।

हमारे स्कूलों की सबसे बड़ी समस्या यह है कि सारी शिक्षा केवल पाठ्यपुस्तकों पर निर्भर हो गई है। वास्तव में पाठ्यपुस्तक शिक्षकों और बच्चों की सहायता के लिए हैं। पाठ्यपुस्तकें शिक्षा में सहायक हो सकती है लेकिन वे कभी भी मुख्य भूमिका नहीं निभा सकती। कितनी ही अच्छी किताब बना दी जाए वह अध्यापक की जगह नहीं ले सकती।

शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में स्कूलों के लिए जो अध्यापक तैयार किए जा रहे हैं उसमें बहुत सुधार करने की जरूरत है। एक साल में शिक्षक बनने के लायसेंस देने की प्रथा खत्म करनी होगी। वहां सीखने के विभिन्न तरीकों और अनुभव प्राप्त करने के अवसर मुहैया कराने होंगे। हमें भावी शिक्षकों के चयन के बारे में भी सोचना होगा। शिक्षकों के चयन में शिक्षा के प्रति उनकी गहरी रुचि व बालकों के प्रति लगाव को प्राथमिकता देनी होगी।

स्कूलों की दिनचर्या एक ढर्रे में सतत चलती है, जबकि हर दिन वहां कुछ नवीन करने की संभावना होती है। रोजाना सुबह घंटी बजती है, प्रार्थना होती है, स्कूल की चहारदीवारी में पढ़ाई होती है और फिर छुट्टी हो जाती है। इसके लिए हमें स्कूल की सोच में बदलाव करते हुए उसे गतिशील बनाना होगा। स्कूल के संस्था प्रधान और शिक्षकों को यह सोचना होगा कि मेरा स्कूल बीते कल से कैसे अलग हो।

यह लेख एम. पी. शर्मा से साक्षात्कार के आधार पर तैयार किया गया है। एम. पी. शर्मा, विद्याभवन गोविन्दराम सेकसरिया शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, उदयपुर में प्राचार्य रहे हैं। वर्तमान में विद्या भवन गांधी महाविद्यालय, उदयपुर के निदेशक हैं।

साक्षात्कारकर्ता – **यशवंत दवे,** विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र, उदयपुर।

डी.एस. पालीवाल

एक जतन यह भी...

बच्चे जहां इकट्ठे होंगे, वहां खेलेंगे, कूदेंगे, लड़ेंगे, चिल्लाएंगे, तोड–फोड़ भी कर सकते हैं। शुरू में केन्द्रों का संचालन करने वालों ने स्कूली मास्टरों तथा अभिभावकों जैसा व्यवहार किया पर धीरे–धीरे साथियों ने उन्हें सहमत कर लिया कि बालक–बालिकाओं के साथ वे तरीकें नहीं अपनाने हैं जिनसे बाल हृदय व्यथित होता है। उनका कार्य सिर्फ 'फेसिलिटेट' करना होता है जहां वे घर–घर जाकर बच्चों को लाते हैं, उनके नखरे झेलते हैं और बहुत स्नेह करते हैं।

चित्र : डी.एस. पालीवाल

मोटे रूप से शिक्षा का मकसद यह है कि विद्यार्थी समाज की वास्तविकता का विश्लेषण कर सके तथा परिवर्तन में अपनी भूमिका का निर्वाह कर सके। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये विद्यालय एक प्रमुख साधन है। प्रश्न यह उठता है कि क्या विद्यालयों का वातावरण उल्लेखित लक्ष्य को पूरा कर रहे हैं? मैं आदिवासी इलाके से इत्तेफाक रखता हूं और दक्षिणी राजस्थान के खेरवाड़ा क्षेत्र की बात करूंगा।

उल्लेखनीय है कि खेरवाड़ा दक्षिणी राजस्थान की 23 तहसीलों में तुलनात्मक रूप से ज्यादा अग्रणी है फिर भी यहां स्कूली शिक्षा की हालत दयनीय है। ऊपरी तौर पर देखें तो खेरवाड़ा के विद्यालयों में सब कुछ ठीक ही चल रहा है। बच्चे स्कूल जा रहे हैं, मीड–डे–मील मिल रहा है, अध्यापक स्कूलों में आ रहे हैं, बच्चों को पढ़ा रहे हैं। खेलों में भी खेरवाड़ा के बच्चे नाम कमा रहे हैं। कुछेक बड़े अफसर भी बने हैं तथा दो तीन लोग प्रशासनिक सेवाओं में भी हैं आदि–आदि। परन्तु विद्यालय के बच्चों का वास्तविक शैक्षणिक स्तर देखें तो ज्ञात होता है कि पांचवीं उत्तीर्ण कर लेने के बाद गणित की प्रारम्भिक गणनाएं भी उन्हें नहीं आती। न ही हिन्दी अच्छी तरह पढ़ सकते हैं। आठवीं बोर्ड में पास होने के बाद भी कमोबेश ये ही हाल बने रहते हैं। दसवीं के परिणामों पर विचार करें तो जनजाति बालकों के उत्तीर्ण होने का प्रतिशत 20 से भी कम है। यहां हम न ड्राप आउट्स की संख्या की बात कर रहे हैं न ही बालक के सर्वांगीण विकास के मापदण्डों से विद्यार्थियों का आकलन कर रहे हैं। इतना ही नहीं साढ़े तीन लाख से ज्यादा जनसंख्या वाले क्षेत्र में उच्चतर माध्यमिक विज्ञान में उत्तीर्ण होने वालों की कुल संख्या सैकड़े से भी कम है और एक मात्र महाविद्यालय में कला के गिने–चुने विषय हैं।

युवा संगठन ने यह पाया कि वर्तमान शिक्षा और पाठ्यक्रम सम्पूर्ण शिक्षा का वातावरण बच्चों को भयभीत करता है तथा आत्म

ग्लानी के गहरे असवाद में धंसाता जाता है जहां से उसे पुस्तकों, अध्यापकों तथा विद्यालय से ही विरक्ति हो जाती है और बाद में जीवन में भी यह अनपढ़ होने और कम पढ़ा–लिखा होने के 'अभिशाप' से दबा–दबा सा रहता है। इस पर भी सहमत थे कि सम्पूर्ण शिक्षा में गुणात्मक परिवर्तन हुए बगैर बालकों का भविष्य अंधकारमय है। तो सवाल उठा कि क्या तब तक इंतजार किया जाए और समाज के सुखद भविष्य को कुचलने का मूक–दर्शक बना जाए? इसके साथ ही अनेक काल्पनिक हल सामने आए पर संगठन में शिक्षा के लिए संवेदनशील तथा समर्पित कार्यकर्ताओं की संख्या देखते हुए अनेक तरफा कार्य शुरू किए गए जो इस प्रकार है–

1. विद्यालयों में शिक्षण को लेकर अध्यापकों से चर्चा।
2. विद्यार्थियों द्वारा अपनी मांगें उठवाना।
3. अध्यापक, अभिभावक तथा विद्यार्थियों की संयुक्त बैठकें करवाना।
4. समय–समय पर विभिन्न पर्चे निकाल कर समाज के समस्त तबकों को शिक्षा, विद्यार्थी तथा समाज के भविष्य की चुनौतियों के प्रति संवेदनशीलता और जागरूकता बढ़ाना।
5. समर्पित अध्यापकों को नवाचार के लिए प्रोत्साहित करना और मदद करना।
6. विद्यालय समय के पश्चात बालकों के शिक्षा केन्द्र चलाना।

बिन्दु एक से पांच तक की प्रक्रियाएं अनेक व्यक्ति, समूह और संस्थाएं करती हैं पर युवा संगठन ये सभी कार्य जन–भागीदारी से ही पूरे कर रहा है। इसके साथ ही एक ऐसे स्थान की कल्पना की जहां बच्चे अपनी मर्जी से आएं, अपनी पढ़ाई अथवा

होमवर्क करें, एक–दूसरे से बातें करें, धुमाल करें और कविता–कहानियां सुनाएं तथा अपने पाठ्यक्रमों को भी पूरा करें। साथ ही मिलजुलकर जो मन में आए वह करें। बालक–बालिकाओं का आत्मविश्वास बढ़ें, वे सवाल करना शुरू करें।

बच्चे जहां इकट्ठे होंगे, वहां खेलेंगे, कूदेंगे, लड़ेंगे, चिल्लाएंगे, तोड–फोड़ भी कर सकते हैं। शुरू में केन्द्रों का संचालन करने वालों ने स्कूली मास्टरों तथा अभिभावकों जैसा व्यवहार किया पर धीरे–धीरे साथियों ने उन्हें सहमत कर लिया कि बालक–बालिकाओं के साथ वे तरीकें नहीं अपनाने हैं जिनसे बाल हृदय व्यथित होता है। उनका कार्य सिर्फ 'फेसिलिटेट' करना होता है जहां वे घर–घर जाकर बच्चों को लाते हैं, उनके नखरे झेलते हैं और बहुत स्नेह करते हैं।

ऐसे केन्द्र घर में शुरू किए गए। बाद में बच्चों की संख्या तथा अभिभावकों की राय के अनुसार स्थान बदला जा सकता है। बच्चों के रात्रिकालीन शिक्षा केन्द्र के लिए रोशनी, बैठने की दरी की आवश्यकता पड़ती है (वैसे बच्चे इस बात की परवाह नहीं करते कि बिछात है या नहीं, बस उन्हें मजा आना चाहिए)। बच्चों को जब रुचिकर पुस्तकों के बारे में बताया तो वे पीछे पड़ गए। जब इधर–उधर से जुगाड़ कर रंग–बिरंगी और दिलचस्प पुस्तकें सौंपी तो कक्षा और उम्र का ख्याल किए बगैर खुद पढ़ना, दूसरों को बताना तथा छोटे बच्चों को समझाना शुरू कर दिया। पुस्तकों का वितरण भी खुद ही करते हैं। जब बच्चों से एक केन्द्र पर फिल्म के बारे में बात की तो बार–बार याद दिलाया और 'तारे जमीं पर' और 'नया दौर' जैसी फिल्मों को समझने के लिए चर्चा भी की। अब बच्चे तरह–तरह की पुस्तकें और फिल्में देखने को उत्सुक हैं।

इन केन्द्रों में सीखने की प्रक्रियाओं से इस क्षेत्र के अध्यापक भी आश्चर्यचकित हैं तथा दूसरे बच्चे भी आकर्षित हो रहे हैं। शुरू में सात केन्द्र संचालित किए पर गर्मी की छुट्टियों में न पुस्तकों की व्यवस्था थी न ही अन्य गतिविधियां करवाई जा सकी। छुट्टियों के पश्चात केन्द्र पुनः शुरू हुए हैं और इस समय चार केन्द्रों के बच्चे अपना अध्ययन केन्द्र चला रहे हैं। प्रमुख बात यह है कि इन केन्द्रों पर न कोई शिक्षा देने वाला है न ही कोई लेने वाला बल्कि सब मिलकर सीखते–सिखाते हैं।

इस प्रक्रिया से हमें यह सीख मिली है कि बच्चों के पाठ्यक्रम, केन्द्रियकृत व्यवस्था एवं प्रचलित परिपाटी से हांकने की बजाए इन विद्यालय को बच्चों के लिए सीखने–सिखाने के केन्द्रों के रूप में विकसित होना चाहिए। जहां वे स्थानीय समस्याओं को समझ सकें, उनसे जूझ सकें। बेशक बच्चों के सीखने की प्रक्रिया में अभिभावक एवं अध्यापक सर्वज्ञाता, ज्ञान बनकर ज्ञान थोपने की बजाय फेसिलिटेटर की भूमिका का निर्वाह करें तो बालकों का बालकों के लिए, बालक के द्वारा संचालित अपना एक स्थान बन सकेगा।

डी.एस. पालीवाल, आदिवासियों के सरोकरों में संलग्न।

वि.वि. सिंह

स्कूल कैसे–कैसे?

पिछले कुछ दशकों में भारत ने स्कूली शिक्षा के प्रसार के मामले में असाधारण प्रगति की है, फिर भी यह निराशाजनक है कि सबके लिए संतोषजनक गुणवत्ता वाली, उपयोगी और संगत स्कूली शिक्षा की व्यवस्था करने का लक्ष्य अभी प्राप्त नहीं हो पा रहा है। आइए, आज के स्कूलों पर हम एक नज़र डालते हैं–

दृश्य – 1

साफ–सुथरे बच्चे स्कूल यूनिफार्म में स्कूल बस, ऑटो–रिक्शा में स्कूल पहुंच रहे हैं। कुछ अभिभावक भी कार या टू–व्हीलर पर बच्चों को स्कूल छोड़ने आ रहे हैं। वह एक प्राइवेट स्कूल है। कक्षाओं में बच्चे पूर्ण अनुशासित बैठे हैं। एक के बाद एक कालांश, अलग–अलग विषय के लिए अलग–अलग शिक्षिका आती हैं। शिक्षिका की भूमिका महत्त्वपूर्ण है, वे समझाती हैं, प्रश्न पूछती हैं बच्चे उत्तर देते हैं।

गृहकार्य के रूप में मिले काम में अभिभावक पूर्ण सहयोग देते हैं। परीक्षा की तैयारी अभिभावक ऐसे करवाते हैं, जैसे यह स्वयं उनकी परीक्षा है। इस दौरान वे अपने कई काम स्थगित रखते हैं। बहुत से बच्चों के लिए स्कूल के अलावा ट्यूशन की सुविधा भी उपलब्ध होती है। परीक्षा में बच्चे के प्राप्तांक ही महत्त्वपूर्ण हैं। कक्षा में कौनसा स्थान (Rank) बच्चे ने प्राप्त किया, नीची रैंक आने पर अभिभावक चिन्तित नज़र आते हैं। बच्चा पाठ्य सामग्री याद करके परीक्षा में उसे अधिकाधिक उसी रूप में प्रस्तुत करके अधिक अंक प्राप्त करने और दूसरे बच्चों से आगे निकलने की होड़ में लगा रहता है।

दृश्य – 2

यह शहर का सरकारी स्कूल है। शहर के गहन आबादी वाले क्षेत्र में स्थापित यह स्कूल एक पुरानी बिल्डिंग में चल रहा है। बैठने के लिए कुछ बड़े तो कुछ बहुत छोटे कमरे हैं। कमरों में भीड़ के कारण शिक्षक के बच्चों तक पहुंचने की गुंजाइश नहीं।

ब्लैक बोर्ड कहीं दीवार पर तो कहीं स्टेण्ड के सहारे खड़े हैं। कुछ पर जो लिखा जाता है – धूमिल सा नज़र आता है। कुछ शिक्षक आते हैं, कक्षा में पढ़ाते हैं। कुछ कक्षाएं खाली रहती हैं। बच्चे गपशप करने के लिए स्वतन्त्र हैं। बीच में कुछ लड़ाई–झगड़ा भी स्वाभाविक है। ज्यादा शोर होने पर कोई शिक्षक आकर डांट लगा देते हैं।

पाठ्य–पुस्तकें खोलकर उनका वाचन और पाठ के पीछे के प्रश्नों के उत्तर करवा दिए जाते हैं। उन्हें ही बच्चे परीक्षा में ज्यों का त्यों लिख दें – इतना ही अपेक्षित है। परीक्षा परिणाम जो भी रहे, उसके लिए न शिक्षक की जवाबदेही है न अभिभावक जिम्मेदारी समझते हैं, अतः बच्चा ही खुद जिम्मेदार माना जाता है।

दृश्य – 3

गांव का कक्षा पांच तक का सरकारी स्कूल है। दो शिक्षक हैं जो शहर से आते हैं बस से और जब बस पहुंचती है तभी स्कूल शुरू होता है। स्कूल की छुट्टी के समय के आसपास एक बस वहां से शहर जाती है। शिक्षकों को उसी से जाना होता है इसलिए बस के वहां पहुंचते ही स्कूल में छुट्टी हो जाती है।

एक शिक्षक के छुट्टी पर रहने से, जो एक आम बात है, दूसरे शिक्षक को ही सारी कक्षाओं को संभालना होता है। कुछ बच्चे भी गिनती या पहाड़े रटवाने में मदद कर देते हैं। अन्य विषयों की पढ़ाई जितनी हो जाए, जैसे हो जाए। ज़मीन पर टाट पट्टियों या जीर्णशीर्ण दरियों पर बच्चे बैठते हैं। कक्षा कक्ष में फर्नीचर के नाम पर सिर्फ एक मेज,उ कुर्सी है।

परीक्षा के प्रश्नपत्र सभी सरकारी स्कूलों के लिए समान होते हैं। बच्चे जितना कर लें ठीक, न कर पाएं तो भी सबको अगली कक्षा में चढ़ा दिया जाए, यही नीति है।

कक्षा आठ तक के सरकारी स्कूल में शिक्षकों की संख्या अधिक है, अतः एक–दो के अनुपस्थित रहने पर भी काम चल जाता है।

पाठ्यपुस्तकों से पाठों का वाचन तदुपरान्त पाठ के पीछे के प्रश्न करवाना आम है। मिड–डे मील भी वितरित करवाना एक ज़िम्मेदारी है, जो शिक्षकों को करनी है। कुछ अन्य दायित्व, जो शिक्षा विभाग द्वारा सौंपे जाते हैं, में शिक्षकों की व्यस्तता के कारण कक्षा में पढ़ाई न हो पाना एक आम बात है। परीक्षा तो होनी ही है फेल–पास भी होना है।

दृश्य – 4

शहर में हर गली मुहल्ले में एक–दो अंग्रेजी माध्यम की पट्टिकाओं (बोर्ड) वाले प्राइवेट स्कूल हैं। स्कूल में टाई वाली यूनिफार्म है। अभिभावक अधिक फीस देकर भी बच्चे को अच्छी शिक्षा दिलाने के प्रयास में जुटे रहते हैं और एक आत्मसंतोष महसूस करते हैं।

इन अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में कम ही शिक्षक हैं जिनका स्वयं अंग्रेजी पर अधिकार है, किन्तु पाठ्यपुस्तकें अंग्रेजी में हैं। बच्चों को अंग्रेजी में ही उत्तर रटने हैं।

अधिकतर स्कूलों में पर्याप्त खेल सामग्री और मैदान उपलब्ध नहीं है पर अभिभावकों को यह बात खटकती नहीं क्योंकि वे सोचते हैं कि पढ़ाई बहुत अच्छी हो रही है। बच्चा अधिकाधिक व्यस्त रहता है। आए दिन होने वाले क्लास टेस्ट, टर्मिनल टेस्ट, हाफ इयर्ली, एनुअल इग्जैम्स फिर ग्रीष्मावकाश से पूर्व नए सत्र का प्रारम्भ सतत् यही कार्यक्रम चलता है। गतिविधियों के रूप में प्रतियोगिताओं का आयोजन, जिनकी तैयारी अभिभावक करवाते हैं।

दृश्य – 5

वातानुकुलित बसों से, शहर के विभिन्न भागों से बच्चे स्कूल पहुंचते हैं। साफ–सुथरी चमचमाती स्कूल बिल्डिंग, उच्च योग्यताधारी शिक्षक, हवा एवं प्रकाश की समुचित व्यवस्था एवं उत्तम फर्नीचर वाले कक्षा–कक्ष, शिक्षण सहायक सामग्री, सभी कुछ उपलब्ध हैं।

बच्चों के लिए उत्तम लंच की व्यवस्था है। फीस के रूप में ली जाने वाली मोटी धन राशि धनाढ्य परिवार वाले सहर्ष चुकाते हैं।

फिर कुछ महंगे आवासीय पब्लिक स्कूल हैं। वर्ष भर की फीस लाख के ऊपर। स्वाभाविक है अमीर घरों के बच्चे ही यहां पढ़ते हैं। हर तरह की सुविधा है खेल की, पुस्तकालय की, दृश्य–श्रव्य सामग्री की। शिक्षक भी अच्छा रिज़ल्ट देने के लिए प्रतिबद्ध है। फिर भी जो बच्चे पढ़ने में रुचि नहीं लेते, कक्षा स्तर से नीचे रह जाते हैं, उन्हें टी.सी. दे दी जाती है। कुछ बच्चे अपनी शरारतों के कारण घर भेज दिए जाते हैं। फर्राटेदार अंग्रेजी बोलने, आत्मविश्वास से भरपूर, आत्मप्रकाशन की योग्यता व क्षमता के कारण उच्च पद प्राप्त कर लेते हैं, अधिकांश को तो अपना पुश्तैनी बिजनेस ही संभालना होता है। अपनी क्षमतानुसार वे कुछ नया भी सोच सकते हैं, कर सकते हैं। आर्थिक कारण उनके मार्ग में कोई बाधा नहीं।

जहां समाज में इतनी विषमता है, शिक्षालयों के भी इतने स्तर हैं उचित माहौल और संसाधनों के अभाव में क्या बच्चों की उपलब्धि समान हो सकती है? बोर्ड की परीक्षाएं सबके लिए समान हैं। परीक्षा परिणाम पर ही बच्चे का भविष्य निर्भर है। हम समानता की बात करते हैं, कैसी समानता, कहां है समानता?

आइए, अब हम एक नज़र डालते हैं राष्ट्रीय शिक्षा आयोगों एवं रिपोर्ट्स की अनुशंसाओं पर। देश सामाजिक और राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में कोठारी कमीशन के मतानुसार शिक्षा बहुत सहायक हो सकती है। देश में सामान्य शिक्षा की एक ही प्रणाली हो। देश में विभिन्न प्रकार के स्कूल चल रहे हैं जो हमारी समाजवादी व्यवस्था के प्रतिकूल हैं उनको तुरन्त बंद करना चाहिए। आयोग ने कॉमन स्कूल्स की स्थापना का सुझाव दिया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में कहा गया है, ''समानता के उद्देश्य को साकार बनाने के लिए सभी को शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध करवाना ही पर्याप्त नहीं होगा ऐसी व्यवस्था होना भी जरूरी हैं जिस से सभी को शिक्षा में सफलता प्राप्त करने के समान अवसर मिलें। इसके अतिरिक्त, समानता की मूलभूत अनुभूति केन्द्रिक पाठ्यचर्चा के द्वारा करवाई जाएगी। वास्तव में राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य है कि सामाजिक माहौल और जन्म के संयोग से उत्पन्न पूर्वाग्रह और कुंठाएं दूर हों।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के अनुसार ''हमारे कई स्कूल आज भी जीर्ण–शीर्ण और टूटे हुए भवनों में चल रहे हैं, जो कि नीरस, अनुत्तेजक, अरुचिकर भौतिक परिस्थितियों को उत्पन्न करते हैं।''

महात्मा गांधी ने शिक्षा को एक ऐसे माध्यम के रूप में देखा था, जो सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त अन्याय, हिंसा व असमानता के प्रति राष्ट्र की अंतरात्मा को जगा सके। स्वतन्त्रता के 60 वर्षों बाद भी हम शिक्षा के क्षेत्र में कितना परिवर्तन ला पाएं हैं – इस पर सोचना और कुछ ठोस कदम उठाना ज़रूरी है, क्योंकि मैकाले को भी हम कब तक दोष देते रहेंगे?

---

fo-fo- f l g] पूर्व प्रधानाध्यापिका, विद्या भवन सोसायटी जूनियर स्कूल। वर्तमान में विद्या भवन सोसायटी में कार्यरत।

यशपाल सिंह

चित्र : एस.एम. इकराम

मोबाइल लायब्रेरी बनाम स्कूल की मददगार

अपने ही शहर के एक ऐसे मोहल्ले में जहां घर कच्चे हैं, बच्चों के कपड़े मैले हैं वहां शाम के समय अचानक एक गाड़ी रुकती है। इस गाड़ी को देखते ही बच्चे दौड़ पड़ते हैं। गाड़ी का दरवाज़ा खुलते ही बच्चों के हाथों में रंग–बिरंगी किताबें होती हैं। कुछ बच्चे इन किताबों को वहीं पढ़ने लगते हैं। कुछ बच्चे इन किताबों को अपने घर ले जाते हैं। जी हां, यह दृश्य है विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र द्वारा संचालित मोबाइल लायब्रेरी का।

विद्या भवन शिक्षा सन्दर्भ केन्द्र उदयपुर, के तत्त्वावधान में उदयपुर शहर की कच्ची बस्तियां रामनगर, पुला, मनोहरपुरा तथा चित्रकूटनगर में मोबाइल लायब्रेरी (चल पुस्तकालय) प्रारंभ की है। इसके पीछे यह समझ है कि ख़ासकर ग़रीब परिवारों के बच्चे जो कच्ची बस्तियों में रहते हैं, वे यदि स्कूल जाते भी हैं तो उनको अलग से किताबें आदि पढ़ने को नहीं मिलतीं। कई बच्चे तो स्कूल जाते ही नहीं। अतः स्कूल जा रहे बच्चों को उनकी दिलचस्पी की किताबें पढ़ने को मिले और स्कूल नहीं जा रहे बच्चों के लिए लिखना–पढ़ना सीखने के मौके मिले इसी के तहत चल पुस्तकालय को एक कड़ी के रूप में देखा जा रहा है।

मोबाइल लायब्रेरी का मक़सद है कि–

- बच्चों में समझ के साथ पढ़ने–लिखने की क्षमता का विकास होना।
- बच्चों को अर्थपूर्ण एवं रचनात्मक मैल–मिलाप हेतु मौका देना।
- बच्चों को स्वतंत्र रूप से सीखने के मौके देना।

चल पुस्तकालय में हमने बच्चों की दिलचस्पी को ध्यान में रखते हुए किताबें, पत्रिकाएं और खेल के सामान आदि शामिल किए हैं।

अब तक के अनुभव से कहा जा सकता है कि मोबाइल लायब्रेरी के तहत बच्चों की पढ़ने में रुचि बढ़ी है। जिस प्रकार से किताबें इश्यू कराने का जुनून बच्चों में बना है उससे लगता है कि बच्चों को यदि पुस्तकें पढ़ने के लिए दी जाएं तो वे बिना भय के पढ़ने के लिए प्रेरित होते हैं। कहानी की किताबें अपनी पाठ्यपुस्तक से ज़्यादा पढ़ते हैं। यही बातें शिक्षकों से तथा अभिभावकों से चर्चा करने के दौरान सामने आ रही हैं। इन बस्तियों के प्राथमिक स्कूल के शिक्षक कहते हैं कि बच्चों को जब भी स्कूल में खाली समय मिलता है वे चल पुस्तकालय से इश्यू कराई गई किताबों को अपने आप पढ़ने बैठ जाते हैं, हमें कहना नहीं पड़ता है।

मोबाइल लायब्रेरी के तहत बच्चों को काफी सारी गतिविधियां करने के मौक़े भी दिए जाते हैं। बच्चे अपनी मर्जी से चित्र बनाते हैं। वे पज़ल्स पर चर्चा करते हैं, उनको सुलझाते हैं।

अभिभावकों से इस मसले पर भी चर्चा कर रहे हैं कि आख़िर शिक्षा क्या है? कुछ अभिभावकों को डर है कि उनके बच्चे स्कूल की पढ़ाई नहीं करते। इनका कोर्स पूरा नहीं होगा यदि अन्य किताबों को पढ़ेंगे। जबकि मोबाइल लायब्रेरी की टीम का कहना है कि इन कहानियों की किताबों के माध्यम से भी पढ़ने–समझने की दक्षता का विकास हो सकता है। शिक्षिकाओं की ओर से कहा जा रहा है कि "अमुक बच्चों को भी किताबें इश्यू कर देना क्योंकि ये पढ़ने में कमज़ोर हैं।" इससे साफ़ झलकता है कि चल पुस्तकालय शिक्षकों को अपने पढ़ाने में सहायक लगने लगा है।

इन सब बातों से लगता है, कि मोबाइल लायब्रेरी किस तरह स्कूली शिक्षा में एक सहायक के रूप में देखी जा सकती है। इसी तरह, सामाजिक स्तर पर भी बच्चों को एक मंच उपलब्ध कराने की कोशिश की जा रही है जिसमें सभी को साथ–साथ खेलना, बातचीत करना तथा अपनी–अपनी कल्पनाशक्ति का इस्तेमाल कर कुछ बनाना जैसी गतिविधियों से आत्मविश्वास जाग्रत हो सके। इन बस्तियों के बच्चों को अक्सर इस तरह के उलाहने सुनने को मिलते रहे हैं कि "तुम पढ़ ही नहीं सकते।" जबकि ये बच्चे अन्य बच्चों की तरह ही हैं। ये चाहे स्कूल में पढ़े नही हैं फिर भी इनकी भाषा तथा व्यावहारिक गणित काफी मजबूत है। बातचीत के दौरान यह भी समझ में आया है कि ये बच्चे अपना हिसाब बख़ूबी लगा लेते हैं।

;'kiky flg] विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, उदयपुर।

गिरीश शर्मा

एक स्कूल ऐसा जहां शिक्षक बच्चों के साथ खेलते हैं!

लर्निंग गारंटी स्कूल कार्यक्रम के अंतर्गत 100 से भी ज़्यादा स्कूलों में जाने का मौक़ा मिला। सिरोही ज़िले का एक राजकीय प्राथमिक विद्यालय इन सभी स्कूलों से अलग लगा। जिस प्रकार के प्राकृतिक वातावरण किन्तु विषम परिस्थितियों में यह विद्यालय चल रहा था वह क़ाबिलेतारीफ़ था। उसकी याद आज भी ताज़ा है। यद्यपि इस विद्यालय में जाने का हमारा उद्देश्य कार्यक्रम के तहत केवल बच्चों का मूल्यांकन करना था फिर भी विद्यालय की कई बातों ने हमें प्रभावित किया। वैसे मेरा इस विद्यालय में जाने का कार्यक्रम अनायास ही बना। यहां लर्निंग गारंटी कार्यक्रम के मूल्यांकन दल के सदस्यों को जाना था। लेकिन जंगल और पहाड़ों के बीच बसे इस गांव में जाने से उन्होंने इंकार कर दिया। उनकी हौसला अफ़ज़ाही के लिए मैंने और मेरे एक और साथी ने उनके साथ जाने का निर्णय किया। रास्ते में जंगल को देखकर कई बार मन में आया कि कहीं हमने यहां आकर ग़लती तो नहीं कर दी। चारों ओर जंगल, दूर–दूर तक इंसान नहीं दिखाई दे रहे थे। चलते हुए हमें यह भय बना हुआ था कि कहीं से कोई जंगली जानवर नही आ धमके। सबसे बड़ी बात तो यह कि हमने जिस पगडंडी पर चलना प्रारंभ किया था उसकी कोई गारंटी नहीं थी कि वह हमें विद्यालय ही ले जाए।

यहां आने से पूर्व संकुल प्रभारी से विद्यालय पहुंचने का रास्ता पूछा। उन्होंने एक सिविल इंजीनियर और एक सहायक सहित हमारे साथ चलने की बात कही। दरअसल आज तक वे भी इस विद्यालय में नहीं गए थे। उन्हें विद्यालय के रिकॉर्ड और भवन का भौतिक सत्यापन करना था। लेकिन ऐनवक़्त पर जब हम सुबह रवाना होनेवाले थे तो उन्होंने चलने से इनकार कर दिया। कारण जो भी रहा हो, चूंकि हमारे लिए मूल्यांकन का वही दिन तय था इसलिए हमने उनके बग़ैर ही जाने का निर्णय किया।

हम जंगल से होते हुए 7 किलोमीटर पैदल चलकर गांव पहुंच गए। गांव का नज़ारा देखकर हम सभी के चेहरे खिल उठे। एक छोटी पहाड़ी पर गांव बसा था तथा नीचे घाटी में एक एनिकट के किनारे बड़ा बरगद पास था विद्यालय। गांव का एक युवक हमें विद्यालय तक ले गया। वहां बरगद के पेड़ के नीचे करीब 20 बच्चे ''चिपस बाटी'' खेल रहे थे। सभी बच्चे विद्यालय गणवेश में थे। उनके साथ गांव का एक युवक जो रेबारी वेशभूषा में था वह भी खेल रहा था।

हमें देखकर उन सभी ने खेलना बंद कर दिया और हमारे ईर्द–गिर्द आकर खड़े हो गए। इतने में विद्यालय के अध्यापक भी आ गए। अध्यापक के पीछे–पीछे कुछ बच्चे भी आ गए। अध्यापक ने उन्हें कुछ नहीं कहा। कुछ बच्चे विद्यालय के दरवाज़े तक आकर रुक गए तो कुछ खिड़की से झांकने लगे। जब हमने अध्यापक को परिचय दिया तो वे बहुत खुश हुए। उन्होंने बताया कि इस गांव में विद्यालय की स्थापना को 8 वर्ष हो गए हैं और पहली बार कोई यहां आया है। हमारे कहने पर अध्यापक ने बच्चों को अपनी–अपनी कक्षा में जाने को कहा। हमने देखा कि अध्यापक ने इसके लिए किसी भी बच्चे के साथ ज़बरदस्ती नहीं की थी और न ही वे किसी

बच्चे से जोर से बोले। कुछ बच्चे चुपचाप अपनी कक्षा में जाकर बैठने लगे तो कुछ हमारे साथ हो लिए।

विद्यालय की ओर जाते हुए अध्यापक ने बताया कि यहां जंगली जानवरों से बहुत ख़तरा है। बीती रात को ही एक पैंथर ने विद्यालय से क़रीब 50 कदम दूर एक गधे का शिकार किया था। बस्ती भी विद्यालय से दूर है इसलिए छोटे बच्चों का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। कई बार तो उन्हें घर तक छोड़ने जाना पड़ता है। विद्यालय में प्रवेश करते हुए उन्होंने बताया कि वे इसी विद्यालय में रहते हैं। हमने देखा विद्यालय तीन कमरों में चलता है। तीनों कमरे अभी नए ही बने लग रहे थे। यहां बच्चों के सीखने–सिखाने का और कोई सामान नज़र नहीं आया सिवाए ब्लैकबोर्ड तथा चॉक के। फिर भी बच्चों के लिए शायद यह जगह सबसे अच्छी थी।

विद्यालय खुलते ही गांव के सभी बच्चे यहां पहुंच जाते हैं। विद्यालय का नामांकन भी ज़्यादा नहीं है। 50 से 60 बच्चों पर एक अध्यापक। हां, अलग–अलग कक्षाओं के बच्चों को पढ़ाने में जरूर दिक़्क़त आती है जिसका समाधान अध्यापक ने खोज रखा है। वे कक्षा चौथी और पांचवीं के बच्चों को पोषाहार के पूर्व और कक्षा पहली, दूसरी, तीसरी के बच्चों को पोषाहार के बाद पढ़ाते हैं।

कक्षा दूसरी व तीसरी के बच्चे एक साथ बाहर खुले में बैठे गए। कक्षा चौथी और पांचवी के बच्चे अलग–अलग कमरों में बैठे थे। दरअसल हमें पहली कक्षा के बच्चों का मूल्यांकन नहीं लेना था इसलिए वे बच्चे फिर से गांव के उस युवक के साथ बरगद के पेड़ के नीचे खेलने चले गए। थोड़ी देर में अध्यापक भी कक्षा दूसरी से पांचवी तक के बच्चों को व्यवस्थित बैठाकर बरगद के नीचे खेल रहे कक्षा पहली के बच्चों के पास गए और उनके साथ खेलने लगे।

हमने बच्चों का लिखित मूल्यांकन लेना प्रारंभ किया। पर्चे बांटने के बाद जब बच्चे हल कर रहे थे तो देखा कि यदि किसी को कुछ समझ नहीं आता तो वे अपने बगल में बैठे बच्चे की कॉपी में झांकते। यही नहीं वे उठकर कक्षा के दूसरे कोने में बैठे अपने साथी तक भी पहुंच जाते। उन्हें फिर से अपनी जगह बैठने को कहा जाता। सभी बच्चे सहज़ दिख रहे थे। यह भी देखा कि उस स्कूल के बच्चों को लिखना–पढ़ना भी आता था।

लिखित मूल्यांकन के बाद पोषाहार करने का समय हुआ। अध्यापक, गांव के युवक और एक महिला ने मिलकर पोषाहार पकाया। सभी बच्चे अपने घर से बर्तन लाए थे। वे पोषाहार करने लगे। बच्चे अपने छोटे भाई–बहनों का ख़्याल रख रहे थे। अध्यापक स्वयं बच्चों को बड़े प्यार और सलीक़े से पोषाहार परोस रहे थे। पोषाहार की सामग्री यहां कैसे पहुंचती है? यह पूछने पर अध्यापक ने बताया कि संकुल पर मासिक बैठक में भाग लेने जाना होता है। उसी दौरान गांववालों की सहायता से सामान ले आते हैं।

विद्यालय में मूल्यांकन की सूचना मिलने पर गांव के दो युवक भी वहां आ गए। वे दसवीं तक पढ़े थे। उन्होंने उसी जिले के कस्बों से कक्षा दसवीं पास की है। वे आर्थिक स्थिति ठीक नहीं होने से आगे नहीं पढ़ सके। उन्होने बताया कि गांव में आजीविका का मुख्य साधन पशुपालन और कृषि है। गांव में संचार के साधनों का अभाव है वे कह रहे थे कि गांव के बच्चों में प्रतिभा है क्योंकि इसी गांव से एक बच्चा मेडिकल की पढ़ाई कर रहा है। यदि बच्चों को मौक़ा मिले तो ये सीख सकते हैं, आगे बढ़ सकते हैं।

पोषाहार के बाद बच्चों का मौखिक मूल्यांकन हुआ। शुरूआत में बच्चे कुछ संकोच कर रहे थे लेकिन बाद में उनकी अभिव्यक्ति और आत्मविश्वास देखते ही बनता था। स्थानीय भाषा में वे क़रीब–क़रीब सभी प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे। मौखिक मूल्यांकन के दौरान हमने अन्य बच्चों को व्यस्त रखने के लिए एक खाली कागज़, पेंसिल, रंग देकर चित्र बनाने को कहा। उन्होंने बहुत सुन्दर चित्र बनाए। रेलगाड़ी और मोटरगाड़ी जो उन्होंने कभी नहीं देखी थी, उनका भी सुन्दर चित्रांकन किया। हमने बच्चों से गीत, कविता सुनाने का आग्रह किया तो वे एक के बाद एक रोचक गीत सुनाने के लिए उठ खड़े होते।

यहां के बच्चों का दुर्भाग्य ही कहें कि इस विद्यालय की स्थापना के बाद से किसी अधिकारी ने यहां का रुख़ नहीं किया। जो अध्यापक यहां नियुक्त हैं वे यहीं रहते हैं और शहरी सुविधाओं के अभाव में भी बच्चों के साथ पूरा समय बिताते हैं। यहां पढ़ रहे बच्चों में शायद बहुत कम बच्चे ऐसे होंगे जो प्राथमिक स्तर की कक्षा उत्तीर्ण करके आगे पढ़ेंगे। शिक्षा अधिकारियों की बेरुख़ी को देखकर इस विद्यालय के आगे क्रमोन्नत होने की आशा करना तो बेकार ही है।

ख़ैर, काम संपन्न करके हमने अध्यापक को धन्यवाद दिया और लौटने की इजाज़त मांगी। शाम के 4 बजे गए थे और अंधेरा होने से पूर्व हमें जंगल से निकलना था। अध्यापक ने हमें एक शार्टकट रास्ता बताया। सो हम उनके बताए रास्ते पर चल पड़े। लेकिन आगे हम भटक गए। तभी एक रेबारी अपने ऊंटों को ले जाते हुए मिल गया। उसने हमें न केवल रास्ता दिखाया बल्कि दूर तक हमें देखता रहा कि हम सही जा रहे हैं या नहीं। मुख्य सड़क तक पहुंचते–पहुंचते अंधेरा हो गया था। वहां से हमें एक सामान ढोनेवाला टेंपो मिला जिसमें बैठकर अपने गंतव्य को पहुंच गए।

मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि इस स्कूल को मैं अच्छा कहूं या ख़राब। मैंने जितने भी स्कूल देखे थे उनमें और इस स्कूल के बच्चों में एक फ़र्क़ तो यह लगा कि यहां बच्चे बड़े ही सहज़ लग रहे थे। स्कूल में सामग्री का अभाव है मगर शिक्षक का बच्चों के साथ दोस्ताना व्यवहार है। एकांत में शहरी चकाचौंध से परे इस स्कूल में शिक्षक ने यहां बच्चों को सीखने के मौक़े उपलब्ध कराए हैं। हांलाकि यहां के बच्चे आगे की पढ़ाई से ज़रूर वंचित रह जाते हैं।

गिरीश शर्मा, विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, उदयपुर।

यशोधरा कनेरिया

कक्षा को देखकर मेरे अचरज़ का ठिकाना नहीं था क्योंकि यहां पर मैं प्रयोगशाला भी देख रही थी। इस प्रयोगशाला में सामग्री ऐसी थी जो अपने आसपास की दुनिया से आसानी से जुटाई जा सकती है। जैसेकि गत्ते, लकड़ी की खप्पचियां और गुटके, मिठाई के खाली डिब्बे, खाली खोखे, प्लास्टिक और कांच की उपयोग की गई बोतलें। मैंने देखा कि यहां पर कबाड़ से जुगाड़ का पूरा इंतज़ाम था।

विज्ञान में प्रयोग : एक दिलचस्प अनुभव

खोजबीन के स्कूल अंक के लिए जब मुझे कुछ लिखने को कहा गया तब मेरे ज़ेहन में एक अनुभव उभरकर आया। चूंकि मैं स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में कार्य कर रही हूं इसलिए अक्सर स्कूलों और कक्षा–कक्ष अवलोकन करने का मौक़ा भी मिल जाता है। इसी सिलसिले में मुझे ऋषिवेली स्कूल में जाने का मौक़ा मिला। यहां पर कक्षा छठी की विज्ञान कक्षा में मैंने जो कुछ भी देखा और समझा उसको मैं आपके साथ विमर्श करना चाहती हूं।

आगे कुछ कहूं इसके पहले यह बताना प्रासंगिक होगा कि ऋषिवेली स्कूल कर्नाटक में बैंगलोर से 120 किलोमीटर दूर मदनपल्ली की पहाड़ियों में बसा हुआ है।

कक्षा अवलोकन के एक दिन पहले हमने कक्षा अध्यापिका से बात कर ली थी कि हम उनकी कक्षा में बैठकर शिक्षण प्रक्रिया का अवलोकन करना चाहते हैं। अगले दिन हम ठीक समय पर कक्षा में पहुंच गए। कक्षा में बच्चों के बैठने की व्यवस्था इस प्रकार थी कि शिक्षिका और बच्चों के बीच संवाद आसानी से हो सके। कक्षा में कुल जमा 20 बच्चे थे। कक्षा को देखकर मेरे अचरज़ का ठिकाना नहीं था क्योंकि यहां पर मैं प्रयोगशाला भी देख रही थी। इस प्रयोगशाला में सामग्री ऐसी थी जो अपने आसपास की दुनिया से आसानी से जुटाई जा सकती है। जैसेकि गत्ते, लकड़ी की खप्पचियां और गुटके, मिठाई के खाली डिब्बे, खाली खोखे, प्लास्टिक और कांच की उपयोग की गई बोतलें। मैंने देखा कि यहां पर कबाड़ से जुगाड़ का पूरा इंतज़ाम था। कक्षा के पीछे जो बेंच दीवार से सटी हुई थी उन पर बच्चों के द्वारा बनाए गए मॉडल रखे गए थे।

कक्षा में क्या हो रहा है इस पर गौर फरमाते हैं। अध्यापिका उस दिन बच्चों को प्याज़ की झिल्ली में कोशिकाएं दिखाना चाहती थी। यहां अध्यापिका का मुख्य उद्देश्य प्याज़ की झिल्ली में कोशिकाएं दिखाना ही नहीं था बल्कि विज्ञान की पूरी प्रक्रिया से बच्चों को परिचित कराना भी था। अध्यापिका ने प्रयोग से संबंधित सारी सामग्री एक टेबल पर पहले ही जमा कर रखी थी जैसे कि कवर स्लिप्स, स्लाड्स, ग्लिसरीन, प्याज़, चाकू, रंजक, सूक्ष्मदर्शी आदि। यहां यह भी बताना चाहूंगी कि अध्यापिका बच्चों को प्रयोगों का प्रदर्शन ही नहीं कर रही थीं बल्कि सभी बच्चों को प्रयोग करने के मौके उपलब्ध करा रही थीं।

सबसे पहले अध्यापिका ने उन प्रयोग सामग्रियों से बच्चों को रूबरू कराया। इसके लिए वे हर बच्चे को स्लाइड, कवर स्लिप छूकर देखने को दे रही थीं। साथ ही उन चीज़ों का उपयोग

कैसे करना है इसके बारे में भी बता रही थी। अब बारी बच्चों की थी। सभी को प्याज़ का एक–एक टुकड़ा उपलब्ध कराकर प्याज़ की झिल्ली स्लाइड पर फैलाने को कहा। जिन बच्चों से प्याज़ की झिल्ली नहीं निकल पा रही थी अध्यापिका उनकी मदद भी कर रही थीं। झिल्ली स्लाइड पर फैलाने के बाद बारी–बारी से सब बच्चों की स्लाइड पर सेफ्रेनिन नामक रंजक डाला और उसके बारे में बताया कि यह कोशिकाओं को रंग देगा जिससे हम उन्हें आसानी से देख पाएंगे। इसके बाद प्याज़ की झिल्ली पर ग्लिसरीन डाला गया। यह काम भी बारी–बारी से हुआ। अब बच्चों को एक–एक करके कवर स्लिप लेनी थी और अपनी स्लाइड पर डालकर सूक्ष्मदर्शी में देखना था। चूंकि दो सूक्ष्मदर्शी ही उपलब्ध थे इसलिए पूरी कक्षा के बच्चों को दो समूहों में बांट दिया गया। सूक्ष्मदर्शी में प्रकाश की व्यवस्था व लेंस को सही व्यवस्थित करने के बाद अध्यापिका ने सभी बच्चों को अपनी स्लाइड लगाकर दिखाने को कहा। सभी बच्चे बारी–बारी से अपनी स्लाइड सूक्ष्मदर्शी में देख रहे थे। जिन बच्चों ने स्लाइड देख ली थी उन्हें अपनी कॉपी में चित्र बनाना था जैसा उन्हें दिख रहा था। बच्चों की मदद के लिए अध्यापिका ने बोर्ड पर एक गोला बनाकर कहा कि ऐसा ही गोला तुम भी अपनी कॉपी में बनाओ और उसमें प्याज़ की झिल्ली में दिखनेवाली कोशिकाओं का चित्र बनाओ। एक बच्चे ने कहा ''अक्का (दीदी) मुझे

जैसा दिख रहा है वैसा ही चित्र बनाऊंगा। अध्यापिका ने सभी बच्चों को कहा कि तुम्हें जैसा दिखाई देता है वैसा ही चित्र बनाओ। बच्चों ने प्रयोग करने के बाद अपनी–अपनी स्लाइड, कवर स्लिप धोकर, उन्हें पोंछकर व्यवस्थित रख दी और अपनी कॉपी में चित्र बनाने लग गए।

अब उन बातों पर थोड़ा विचार कर लेते हैं जिन्होंने मुझे बहुत प्रभावित किया। इस कक्षा में कुछ बातें मुझे बहुत अच्छी लगीं जैसेकि अध्यापिका को यह पहले से ही स्पष्ट था कि अगले दिन उन्हें कक्षा में क्या करवाना है। उसने संबंधित पूर्व तैयारी कर ली थी। दूसरा, आप यह मत समझिए कि इस कक्षा में बच्चे बिल्कुल चुपचाप बैठकर तथाकथित अनुशासित ढंग से काम कर रहे थे। बच्चे मस्ती भी कर रहे थे, बातें भी कर रहे थे लेकिन अध्यापिका उनके साथ बहुत ही प्यार से पेश आ रही थीं। तीसरी और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि इस कक्षा में बच्चों को अपनी बात कहने और मनमर्जी करने की पूरी आज़ादी थी। यानेकि बच्चों की बात को सम्मान दिया जा रहा था। उन्हें सुना जा रहा था। शायद इन्हीं सब कारणों की वजह से बच्चों और अध्यापिका के बीच दोस्ताना संबंध था। इस विद्यालय की इसी कक्षा में मैं अगले तीन दिन तक लगातार गई। हर बार मुझे कक्षा में खुलापन दिखाई दिया जहां बच्चे खुद से सीख रहे थे और शिक्षिका की भूमिका एक मददगार के रूप में थी।

यशोधरा कनेरिया, विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, उदयपुर।

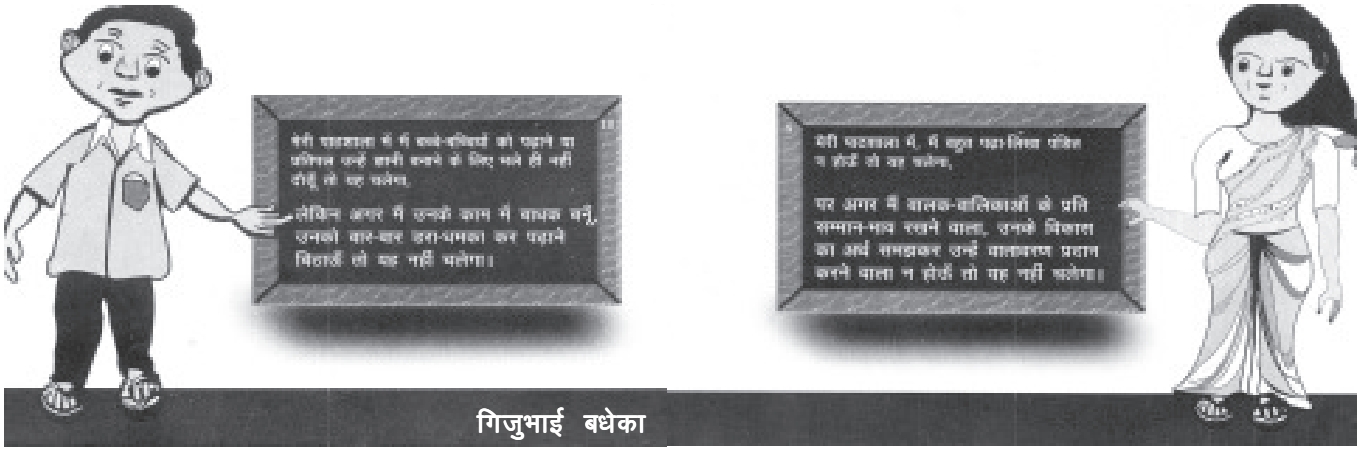

बुनियादी शिक्षा एक संपूर्ण शिक्षा

हमारे यहां स्कूल तो नित–नए खुलते जा रहे हैं मगर उनमें बच्चों को क्या और कैसे पढ़ाना चाहिए यह चिंता का विषय है। इसी चिंता को ध्यान में रखते हुए विद्या भवन सोसायटी की एक स्कूल बुनियादी स्कूल रामगिरि में बच्चों को सीखने के अपार अवसर दिए जाते हैं। इस स्कूल में बच्चों को कौशल सिखाए जाते हैं। इसके लिए बच्चों को हाथों से काम करने के अवसर मुहैया कराए जाते हैं। बच्चे जो भी काम करते हैं उसके माध्यम से ज्ञान का सृजन भी खुद करते हैं। उल्लेखनीय है कि बुनियादी स्कूल में गांधीजी के द्वारा सुझाई गई बुनियादी शिक्षा चलाई जा रही है।

बुनियादी शिक्षा के तत्व जो कि सदा ही प्रासंगिक रहेंगे–

- काम के माध्यम से शिक्षा। बच्चा जो भी ज्ञान अर्जित करें उसमें काम को अहमियत दी जाए। काम ऐसा हो जो सृजनशील हो।
- मातृभाषा में शिक्षा।
- जो शिक्षा दी जाए वह अपने परिवेश से जुड़ी हुई हो।
- जिम्मेदार नागरिकता का निर्माण करें। छात्रों में आत्मविश्वास का निर्माण हो। समाज में शांति की स्थापना हो।

बुनियादी शिक्षा का मूल मंत्र यह है कि बच्चों को हाथों से कार्य करने के मौके मिले। इस लिहाज़ से बुनियादी स्कूल में उद्योग प्रारंभ किए गए हैं जिनमें बच्चे हुनर के कार्य करते हैं। यदि हम इस स्कूल में देखें तो बच्चों को खाद्य प्रसंस्करण, सिलाई, सुथारी, बिजली की मरम्मत, कंप्यूटर और कागज़ उद्योग में कार्य के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करते देखा जा सकता है। यहां प्रयास इस प्रकार के किए जा रहे हैं कि उद्योगों को केंद्र में रखकर गणित, भाषा, विज्ञान, कला, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र की बारीकियों को समझने का अवसर मिले। इसके साथ ही यदि हम कक्षाओं में देखें तो बच्चों के लिए कक्षा पुस्तकालय का निर्माण किया गया है। कक्षाओं में पुस्तकालय की अवधारणा के तहत बच्चों को बढ़िया किताबें पढ़ने के अवसर दिए जाते हैं। इस प्रक्रिया में बच्चों की पढ़ने के प्रति दिलचस्पी तो बढ़ी ही है साथ ही उनकी समझ भी पुख्ता हो रही है।

बुनियादी स्कूल : एक नज़र में

- पाठ्यपुस्तकीय शिक्षण सर्वमान्य शिक्षण नहीं। सीखने के लिए कक्षाओं में बच्चों के अपने संदर्भ की पुस्तकों का उपयोग किया जाता है।
- बच्चों को हाथों से रचने के अवसर उपलब्ध कराए जाते हैं।
- बच्चों को अपने परिवेश में ले जाया जाता है जहां उनको विभिन्न प्रकार के कार्य करने को प्रेरित किया जाता है।
- बच्चों को सवाल पूछने के लिए प्रेरित किया जाता है। ज्ञान के निर्माण पर कोई भी बच्चा सवाल कर सकता है।
- बच्चे को असहमति जताने का पूरा अधिकार होता है।
- बच्चों की सीखने में सक्रिय भागीदारी होती है।
- प्रतियोगिता के बजाए सहयोगपूर्ण क्रियाकलाप और सामूहिक विकास को तवज्जौ दी जाती है।
- बच्चों की दिलचस्पी, सीखने की रणनीति और विविधिता को मान्यता दी जाती है।
- सीखने की प्रक्रिया को बच्चे के संदर्भ से जोड़ने का प्रयास किया जाता है।

सीखने की प्रक्रिया का एक और अभिन्न अंग है आसपास के वातावरण, प्रकृति, चीजों व भाषा। बच्चे का समुदाय और उसका स्थानीय वातावरण सीखने में अहम भूमिका अदा करता है। परिवेश के साथ अंतःक्रिया करके ही बच्चा ज्ञान सृजित करता है और जीवन में सार्थकता पाता है। बुनियादी स्कूल रामगिरि के बच्चों को अपने समाज के साथ संवाद करने के अवसर भी दिए जाते हैं।

अरविंद गुप्ता

बच्चों का बाग–नील बाग

ज़्यादातर स्कूल बच्चों के लिए एक कच्ची जेल होते हैं। सच बात तो यह है कि बच्चे स्कूल जाना ही नहीं चाहते हैं। परंतु उनके मां–बाप उन्हें स्कूलों में ढकेलते हैं। स्कूल जाएं या न जाएं, इस बात का निर्णय बच्चों के हाथों में नहीं होता है। आज सरकार गांव–गांव में स्कूल खोल रही है। परंतु इन उबाऊ स्कूलों में जाने के बजाए बच्चों को बाहर की दुनिया में ही ज़्यादा मज़ा आता है।

पिछले बीस सालों में मुझे 1,200 से भी अधिक स्कूलों को देखने का मौका मिला। नीलबाग उसमें से सबसे नायाब था। उसकी खूशबू आज भी मेरी रूह से चिपकी है। मैं नीलबाग अलग–अलग कारणों से तीन बार गया और वहां की यादें मेरे ज़ेहन में आज भी तरोताज़ा हैं।

नीलबाग गांव के बच्चों के लिए था। वहां बच्चे इसलिए आते थे क्योंकि वो उनके लिए शायद दुनिया की सबसे रोचक जगह थी। स्कूल शुरू होने से एक घंटा पहले ही बच्चे स्कूल में आकर डेरा जमा देते थे। डेविड चाहते थे कि बच्चे अपने गांव में ही रहें। शायद इसलिए उन्होंने बच्चों के लिए नीलबाग में कोई होस्टल नहीं खोला। होस्टल में रहने से बच्चों का गांव से अलगाव होने का डर था। शाम को स्कूल खत्म होने के बाद भी बच्चे घर नहीं जाते थे। वे स्कूल में ही जमे रहते थे। जब काफ़ी रात हो जाती थी तो डेविड उन्हें प्यार से डांटते थे, ''तुमने दिनभर मेरा भेजा खाया है अब तो कम्बख्तो मुझे चैन की सांस लेने दो।'' इसके बाद डेविड रात के अंधेरे में किसी पाइॅड–पाईपर की तरह गाना गाते हुए बच्चों को गांव तक छोड़ आते।

नीलबाग में स्कूल एक लंबे कमरे में लगता था। कमरे की एक दीवार में पत्थरों की एक खुली अलमारी बनी थी। अलमारी के शेल्फ़ों पर तरह–तरह की पुस्तकें और अन्य शिक्षण–सामग्री रखी होती थी। इसमें से अधिकांश सीखने के सामान को बच्चों और शिक्षकों ने मिलकर ही बनाया था। इस क्लास में पहली से दसवीं कक्षा तक के बच्चे एक साथ पढ़ते थे। क्लास में कोई लेक्चर नही होता था। बच्चे भिन्न–भिन्न विषयों पर अपने स्तर की किताबें चुनकर उन्हें अपनी रफ्तार से पढ़ते थे। किसी पुस्तक के समाप्त होने पर वो शेल्फ़ पर से उसी विषय की अगली पुस्तक उठाकर उस पर काम करते। जैसे कि किसी परिवार में बड़े बच्चे अपने छोटे–भाई बहनों को सिखाते हैं वैसे ही कक्षा में भी होता है। अगर किसी किसी बच्चे को कुछ समझ में नहीं न आता तो वो अपने से कुछ बड़े बच्चे से उस बात को समझ लेता। वैसे बच्चों की सहायता करने के लिए कक्षा में कोई शिक्षक भी होता था। बच्चों को अपनी गति से पढ़ने की छूट थी। यहां किसी बच्चे के लिए एक समय पर तीसरी की तेलगू, आठवीं की गणित और छठवीं कक्षा की अंग्रेज़ी पढ़ना संभव था।

नीलबाग एक अनूठा स्कूल था। यहां गांव के बच्चे पांच भाषाएं जानते थे– कन्नड, तेलगू, संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी। नीलबाग में बच्चे दुनिया की 10 भाषाओं के 150 गाने जानते थे। बच्चों की अभिव्यक्ति और उनका आत्मविश्वास दोनों ही देखने काबिल था। जब कोई मेहमान नीलबाग आता तो बच्चे उनसे गीत सुनाने को आग्रह करते और जब तक मेहमान उन्हें दो नए गाने नहीं सुनाता तब तक उसे उठने नहीं देते। इनमें से कई बच्चे बाद में जाकर डाक्टर इंजीनियर बने। आज़ादी के बाद, गांव के बच्चों को विश्व–स्तरीय स्कूली शिक्षा देने का नीलबाग एक अनूठा प्रयास था। इस प्रयोग ने एक बात साफ़ सिद्ध कर दी– गांव के बच्चों में भी अद्भुत प्रतिभा है। उन्हें अगर सही माहौल मिले तो वे सीखने में दुनिया में किसी से कम नहीं हैं।

नीलबाग को डेविड ने शुरू किया। 1948 में उनकी मृत्यु के बाद शायद नीलबाग की आत्मा भी धराशाही हो गई। डेविड के बाद उनके पुत्र निकोलस और पत्नी डोरीन ने दो–तीन साल नीलबाग को चलाया परंतु अंत में वो नीलबाग को कृष्णमूर्ति फाउंडेशन को सात लाख रुपए में बेचकर इंग्लैंड वापिस चले गए। कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ने नीलबाग की गरिमा को दुबारा स्थापित करने के काफ़ी प्रयास किए परंतु वो इसमें असफल रहे। वो डेविड का कोई विकल्प नहीं खोज पाए। डेविड का व्यक्तिगत पुस्तक संकलन एकदम लाजवाब था। उनके पास दुनिया भर के विषयों पर तकरीबन 7000 चुनिंदा किताबें थीं।

डेविड ने अपनी मर्ज़ी के मुताबिक अपनी ज़िंदगी जी। वो अद्भुत प्रतिभा के धनी थे डेविड ने अपने सपने नीलबाग को शायद इसीलिए चला पाए क्योंकि वे धन के लिए किसी के मोहताज़ नहीं थे। विदेशी ऍड–एजेंसियों से वो दूर रहे। डेविड और उनके पुत्र निकोलस ने मिलकर करीब सौ से अधिक पुस्तकें लिखीं जिनमें से अधिकांश को, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस और ओरियेंट लौंगमैन ने छापा है। इन पुस्तकों पर उन्हें भारी मात्रा में सालाना रायल्टी मिलती थी और उसी से स्कूल का अधिकांश खर्च चलता था। आज भी नीलबाग ट्रस्ट को मिली रायल्टी से कुछ स्कूलों को सहायता मिलती है।

हाल ही के कुछ सालों में कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन ने नीलबाग को एक बैंगलोर स्थित संस्था को सौंप दिया है। यह संस्था विकलांग बच्चों की सहायता के काम में लगी है।

नीलबाग के डेविड : प्रकाशक – भारत ज्ञान विज्ञान समिति से साभार।

वसीली सुखोम्लीन्स्की

प्राथमिक विद्यालय क्या है?

अगस्त, 1952 का आख़िरी दिन था। शांत–सुहानी सुबह को स्कूल के सामने हरे–भरे मैदान के सारे छात्र, अध्यापक और माता–पिता इकट्ठे हुए। नया शैक्षिक वर्ष शुरू होने के कारण एक दिन पहले हमारे यहां स्कूल और पुस्तक का समारोह मनाने की परंपरा थी। इस बार यह समारोह विशेषतः हर्षमय था।

दूर–दराज़ के अनजाने देशों की यात्रा पर चलने से पहले, जिस प्रकार यात्री अपने साथियों और सहयात्रियों की आंखों में आंखें डालकर देखता है, वैसे ही मैं अपने बच्चों की आंखों में झांकता हूं। मेरे सामने 16 लड़के और 14 लड़कियां हैं। बच्चों के माता–पिता और बहुतों के नाना–नानी, दादा–दादी भी आए हैं। कोल्या और तोल्या की माताएं यहां हैं। गाल्या की सौतेली मां उसके कंधे पर हाथ रखती है और इस बार साल भर पहले की भांति बच्ची की भौंहें नहीं तन जातीं। सब हमें बधाइयां देते हैं, सफलता की कामना करते हैं। दसवीं कक्षा के छात्र बच्चों के पास आते हैं, सफलता की कामना करते हैं। दसवीं कक्षा के छात्र बच्चों के पास आते हैं और सबको उपहारस्वरूप एक–एक पुस्तक देते हैं। इस पर लिखा हैः ''नन्हें दोस्त, ज्ञान–पथ पर तुम्हारी यात्रा सफल हो। इस पुस्तक को संभालकर रखना। यह जीवन भर तुम्हें स्कूल के इस समारोह की, उस दिन की याद दिलाएगी, जब तुम छात्र बने थे। अपने परिवार के पुस्तकालय में इस पुस्तक को रखना।'' (कितने बरस बीत गए हैं, मेरे छात्र अब वयस्क हो गए हैं। उन सबने अपनी–अपनी पुस्तक को सुनहरे बचपन की पावन स्मृति के रूप में संजोकर रखा हुआ है)।

नन्हें बच्चे और उनके माता–पिता, अध्यापक और दसवीं के छात्र सब स्कूल के बाग़ में जाते हैं। युवक–युवतियां ध्यान से सेब के एक छोटे–से पेड़ की जड़ समेत खोदते हैं, जमीन के ढेर के साथ उसे एक दूसरे गड्ढे में लगाते हैं। सब बच्चे मुट्ठी भर मिट्टी गड्ढे में डालते हैं, गड्ढा भर जाता है। बच्चे पेड़ को पानी देते हैं और अपने–अपने घर चले जाते हैं।

कल बच्चे स्कूल आएंगे, उनका पहला पाठ होगा, चार साल तक वे प्राथमिक विद्यालय के छात्र होंगे, चार साल तक मैं उन्हें पढ़ाऊंगा। उनका चरित्र निर्माण करूंगा। इस दिन की पूर्व वेला में मेरे मस्तिष्क में एक ही प्रश्न थाः ''प्राथमिक विद्यालय क्या है?'' प्राथमिक विद्यालय की विशाल, निर्णायक भूमिका के बारे में बहुत कुछ कहा जाता है। ''ज्ञान की सुदृढ़ नींव प्राथमिक कक्षाओं में रखी जाती है'', ''प्राथमिक कक्षाएं सभी आधारों का आधार हैं'', बिचली (5–8) और बड़ी (9–10) कक्षाओं में शिक्षा की कमियों और त्रुटियों की, छात्रों की सतही ज्ञान की चर्चा चलने पर अक्सर यह सुनने में आता है। प्राथमिक विद्यालय पर प्रायः यह आरोप लगाया जाता है कि उसने बच्चों को यह ज्ञान नहीं दिया, वह सब काम करना नहीं सिखाया, जो आगे की शिक्षा के लिए अनिवार्य है।

हां, हमारा अनुभव इस बात की पुष्टि करता है कि प्राथमिक विद्यालय को सर्वप्रथम बच्चों को पढ़ना, शिक्षा पाना सिखाना चाहिए। चेकोस्लोवाकिया के यान कामेंस्की (1562–1670), रूस के उशीन्स्की (1824–1870), और जर्मनी के ए. डीस्टेर्वेग (1790–1833) जैसे सभी महान शिक्षकों ने भी यही कहा है। व्यवहार से, शिक्षकों से अनुभव से भी बात की पुष्टि होती है। प्राथमिक विद्यालय का सबसे महत्वपूर्ण कार्यभार यह है कि वह बच्चों को एक निश्चित दायरे के अंदर ठोस ज्ञान और योग्यता प्रदान करें। पढ़ने, लिखने, अपने चारों ओर के संसार की परिघटनाओं को प्रेक्षण करने, सोचने और अपने विचारों को शब्दों में व्यक्त करने की योग्यताएं ही शिक्षा पाना सीखने के लिए नितांत आवश्यक हैं)। यह ज्ञान प्राप्ति के उपकरणों के समान है।

प्राथमिक कक्षाओं के बच्चों को पढ़ाने की तैयारी करते हुए मैंने यह तय करने की कोशिश की कि बच्चों को इन वर्षों में क्या कुछ अच्छी तरह याद कर लेना चाहिए और सदा के लिए स्मृति में रखना चाहिए तथा उन्हें क्या–क्या काम करने आने चाहिए।

परंतु प्राथमिक विद्यालय के कार्यभार यहां तक ही सीमित नहीं है। क्षण भर को भी नहीं भूलना चाहिए कि प्राथमिक कक्षाओं में अध्यापक का वास्ता बच्चों से ही होता है।

पहली से चौथी कक्षा तक के वर्ष–7 से 11 साल की उम्र के वे वर्ष हैं, जब बच्चा इंसान के रूप में ढलता है। बेशक, यह प्रक्रिया इस काल में ही पूरी नहीं हो जाती, पर हां, इन चार सालों में ही मानव–व्यक्तित्व का बुनियादी ढांचा बन जाता है, इस ढांचे में संवार–निखार होकर ही पूर्णतः विकसित व्यक्तित्व बनेगा। इस अवधि में बच्चे को केवल आगे की शिक्षा के लिए तैयार नहीं होना चाहिए, उसे केवल आगे भी सफलतापूर्वक शिक्षा पाने के लिए आवश्यक ज्ञान और योग्यताओं का भंडार ही नहीं बनाना चाहिए। बच्चे को एक समृद्ध, चहुंमुखी आत्मिक जीवन भी जीना चाहिए। प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षा के वर्ष के नैतिक, बौद्धिक, भावनात्मक, शारीरिक और सौंदर्यबोधात्मक विकास का पूरा काल है। यह विकास कोरी बातें न होकर यथार्थ कार्य केवल तभी होगा, जबकि बच्चा आज भी समृद्ध जीवन जी रहा हो, केवल भावी जीवन में ज्ञान प्राप्ति की ही तैयारी न कर रहा हो।

हमारे देश में प्राथमिक कक्षाओं के हज़ारों–हज़ार श्रेष्ठ शिक्षक हैं। इनमें से प्रत्येक बच्चों के लिए केवल ज्ञान–दीप ही नहीं, बल्कि सच्चे अर्थों में जीवन गुरु भी है सोवियत देश में प्राथमिक विद्यालय सार्विक माध्यमिक शिक्षा का ठोस आधार है। परंतु यह भी कहे बिना नहीं रहा जा सकता कि हमारे बहुत–से प्राथमिक विद्यालयों में और विशेषतः माध्यमिक विद्यालयों की प्राथमिक कक्षाओं में कई गंभीर कमियां भी हैं। कुछ स्कूलों में प्राथमिक कक्षाओं के छात्रों की स्थिति मुझे दयनीय लगती हैः बच्चे की पीठ पर मानो बोरा लदा हुआ है, जिसमें मास्टर जी ज़्यादा से ज़्यादा बोझ ठूंसने की कोशिश करते हैं और बच्चे के सारे जीवन की, उसके कार्यकलापों की सार्थकता उनके ख़याल में बस यही है कि वह इस बोझ को एक निश्चित सीमा तक बिचली और बड़ी क्लासों तक ढो ले।

प्राथमिक विद्यालय के छात्र के एक निश्चित परिधि के अंदर ठोस ज्ञान प्रदान करना चाहिए। इस प्रश्न में कोई भी अस्पष्टता और अनिश्चितता न केवल प्राथमिक विद्यालय को ही, बल्कि शिक्षा की अगली कड़ियों को भी कमज़ोर बनाती है। अगर यह तय नहीं कि बच्चे को क्या ज्ञान, क्या व्यावहारिक शिक्षा देनी है, क्या कुछ करना सिखाना है, तो फिर स्कूल स्कूल ही नहीं। शिक्षा की प्राथमिक कड़ी की एक सबसे गंभीर कमी यही है कि प्रायः अध्यापक को इस बात का ख़याल नहीं रहता कि पढ़ाई के पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे बरस में छात्रों को कौन–कौन से नियमों और परिभाषाओं को ख़ूब अच्छी तरह लेना और याद कर लेना चाहिए, कौन से शब्द उन्हें ठीक–ठीक से लिखने आने चाहिए और फिर कभी यह नहीं भूलना चाहिए कि वे कैसे लिखे जाते हैं। बच्चों के बौद्धिक श्रम को अधिक से अधिक सरल बनाने के प्रयत्न में कुछ अध्यापक यह भूल जाते हैं कि बच्चे के लिए कुछ जानना, किसी बात में रुचि लेना ही नहीं, बल्कि उस बात को अच्छी तरह याद करना और सदा के लिए स्मृति में बनाए रखना भी आवश्यक है। आजकल प्राथमिक कक्षाओं के छात्रों के सामान्य विकास के विषय पर बहुत कुछ कहा जा रहा है। निसंदेह, सामान्य विकास शिक्षा और चरित्र–निर्माण अत्यंत महत्वपूर्ण है, किन्तु उस बुनियादी ज्ञान की भी भूमिका इतनी ही महत्वपूर्ण है, जिसे अच्छी तरह याद रखे बिना, स्मृति में सदा बनाए रखे बिना सामान्य विकास भी नहीं हो सकता, क्योंकि सामान्य विकास का अर्थ है निरंतर ज्ञान प्राप्ति और इसके लिए शिक्षा पाना, अध्ययन करना आना चाहिए।

प्राथमिक विद्यालय के कार्यभारों के असाधारण महत्व के बावजूद यह नहीं भूलना चाहिए कि यहां अध्यापक का वास्ता बच्चों से होता है, जिनके तंत्रिकातंत्र का इन बरसों में तीव्र विकास हो रहा होता है। बच्चे के मस्तिष्क को ऐसा सजीव यंत्र नहीं समझना चाहिए, जो बस ज्ञान को ''पचाने'', याद करने और स्मृति में बनाए रखने के लिए ही तैयार रूप से उपलब्ध है। 7 से 11 साल की उम्र में बच्चे के मस्तिष्क का तीव्र विकास होता है। और अगर अध्यापक यह भूल जाता है कि बच्चे के तंत्रिकातंत्र के लिए विकास की, कार्टेक्स की कोशिकाओं को सुदृढ़ करने की चिंता करनी चाहिए, तो पढ़ाई बच्चे को मंदबुद्धि ही बनाएगी।

निरंतर ज्ञान संचय, स्मरण शक्ति का अभ्यास और रट्टेबाज़ी यही पढ़ाई नहीं है। रट्टेबाज़ी तो बच्चे के स्वास्थ्य के लिए भी और बौद्धिक विकास के लिए भी हानिकर है। मैंने अपना लक्ष्य यह रखा कि पढ़ाई, शिक्षा बच्चे समृद्ध आत्मिक जीवन का ऐसा अंश हो, जो बच्चे के विकास में, उनकी बुद्धि को समृद्ध बनाने में सहायक हो। रट्टेबाज़ी नहीं, बल्कि खेलों, कहानियों, सौंदर्य, संगीत, कल्पना और सृजन के संसार में झरने–सा बहता बौद्धिक जीवन– ऐसी होगी मेरी छात्रों की शिक्षा। मैं चाहता हूं कि बच्चे इस संसार में अपने को नए–नए ज्ञान की खोज कर रहा अन्वेषक और सृजनकर्त्ता अनुभव करें। प्रेक्षण करना, सोचना, चिंतन–मनन करना, श्रम में खुशी पाना और अपने कार्य पर गर्व करना, लोगों के लिए सुंदरता और ख़ुशी की रचना करना और उसमें सुख पाना, प्रकृति, संगीत और कला के सौंदर्य पर विमुग्ध होना और इस सौंदर्य से अपने आत्मिक जगत को समृद्ध बनाना, लोगों के दुख–सुख में हाथ बंटाना यही है चरित्र निर्माण का मेरा आदर्श। परंतु इसके साथ ही सुस्पष्ट रूप से निर्धारित लक्ष्य को भी नहीं भूलना चाहिए। बच्चों को क्या कुछ जानना है, कौन–कौन से शब्द लिखने सीखने हैं और उन्हें कभी नहीं भुलाना है, अंकगणित के कौन से नियम उन्हें सदा के लिए याद करने हैं। ''ख़ुशियों के स्कूल'' में ही मैंने उन शब्दों की सूची बना ली थी, जो बच्चों को पहली से चौथी कक्षा तक सीखने होंगे।

मेरे विचार में प्राथमिक विद्यालय का एक सबसे बड़ा कार्यभार यह है कि बच्चों को बौद्धिक श्रम की विधियों, रूपों और साधनों से लैस किया जाए। कई स्कूलों के प्रिंसिपल और इंस्पेक्टर प्राथमिक कक्षाओं को महत्व नहीं देते। उनके इस रूख़ पर मुझे बड़ी परेशानी होती है। इंस्पेक्टर स्कूल में आते हैं और सबसे पहले यही जानना चाहते हैं कि बिचली और बड़ी क्लासों में पढ़ाई कैसे होती है, प्राथमिक कक्षाओं की ओर तो वह ऐसे देखते हैं, मानो यहां असली पढ़ाई न होकर, पढ़ाई का खेल ही होता हो। इस खेल पर सब गद्‌गद होते हैं, लेकिन जब बच्चे पांचवीं कक्षा में पहुंचते हैं, तब उनके अधूरे ज्ञान पर सब परेशान होने लगते हैं। अपने बच्चों की शिक्षा आरंभ करते हुए मैंने यह दृढ़ निश्चय किया कि ऐसा गद्‌गद होने का कोई भाव नहीं होगा। दूसरी कक्षा के अंत तक बच्चों की इस तरह धाराप्रवाह और सचेत ढंग से पढ़ना सिखा देना चाहिए कि वे छोटे–छोटे वाक्यों को और बड़े वाक्यों के अंशों को अपनी नज़रों से एक पूर्ण ''इकाई'' के रूप में ग्रहण करें। पठन–पाठन चिंतन और बौद्धिक विकास का एक स्रोत है। मैंने बच्चों को इस तरह पढ़ना सिखाने का लक्ष्य रखा कि वे पढ़ते हुए सोचें। पठन–पाठन बच्चे के लिए ज्ञान–प्राप्ति का एक सूक्ष्म उपकरण और उनके साथ ही समृद्ध आत्मिक जीवन का स्रोत हो जाना चाहिए।

बाल–हृदय की गहराइयां : प्रकाशक – प्रगति प्रकाशन से साभार।

ज्योति चौरड़िया

सीखने–सिखाने का ज़रिया

चित्र : सेवा मंदिर द्वारा प्रकाशित न्यूज़लेटर के सौजन्य से

ग्रामीण एवं आदिवासी इलाकों में बच्चों को शिक्षा से जोड़ने के लिए सेवामंदिर द्वारा अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र (एनएफई) चलाए जा रहे हैं। ये केन्द्र इसलिए भी खोले गए हैं कि एक तो वहां स्कूलों का अभाव है। यदि स्कूल हैं भी तो अधिक दूरी पर, वहां तक छोटे बच्चे खासकर बच्चियां तो जा ही नहीं सकती। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए सेवा मंदिर द्वारा लगभग 175 अनौपचारिक केंद्र उदयपुर संभाग के पांच ब्लॉक– कोटड़ा, खेरवाड़ा, झाड़ोल, बड़गांव एवं गिर्वा के छोटे–छोटे गांवों में चलाए जा रहे हैं।

एनएफई एक ऐसी जगह है जहां बच्चों को बिना किसी स्कूली पाठ्यक्रम के पढ़ाया जाता है। ज़ाहिर है कि उन आदिवासी बच्चों को स्कूल का पाठ्यक्रम रास भी नहीं आएगा। इन केंद्रों की एक और खूबी कहें कि ये स्कूली शिक्षा की तरह एक बंधे समय में नहीं चलते हैं। इनका समय गांव और बच्चों की सुविधाओं के अनुसार होता है। कई जगह सुबह 9 से 2 बजे तक तो कहीं शाम को 3 से 8 बजे तक होता है। इन केन्द्रों पर बच्चो को पढ़ाने के लिए एक व्यक्ति जो कि स्त्री या पुरूष हो सकता है। केंद्र में बच्चों को पढ़ाने वाले को अनुदेशक कहा जाता है।

गांव के पढ़े–लिखे में से ही अनुदेशक का चयन किया जाता है अनुदेशक भी स्थानीय संदर्भ के साथ जुड़ा हुआ है जिससे बच्चे जुड़े हुए हैं। चूंकि अनुदेशक स्थानीय स्तर के होते हैं इसलिए वह अन्य जगहों से पढ़ाने आने वाले व्यक्ति की तुलना में अधिक समय दे पाते हैं। और निकटता से काम कर पाते है। एक दूरगामी सोच यह भी है कि गांव में पढ़े–लिखे युवक–युवतियां अपने गांव के ही टिक सकेंगे। अनुदेशकों की शिक्षा को देखें तो अधिकांश की स्कूली शिक्षा भी पूर्ण नहीं हो पाती है। ये आठवीं से बारहवीं तक पढ़े लिखे हैं। कुछ अनुदेशक ऐसे भी हैं जो स्नातक या स्नातकोत्तर स्तर के लिए पढ़ाई करने लगे हैं। अधिकांश अनुदेशक ऐसे परिवारों से संबंधित हैं जिनका मुख्य व्यवसाय खेती है। कुछ अनुदेशक मज़दूरी या छोटे–मोटे व्यवसाय से जुड़े हैं। बहुत ही कम अनुदेशक ऐसे हैं जिनके परिवार के सदस्य प्राइवेट या सरकारी नौकरी में हों। महिला एवं पुरुष दोनों ही खेती करते हैं। पुरुष कभी–कभी पास के कस्बों या शहरों में काम के लिए चले जाते हैं। महिलाएं भी मजदूरी का काम करती हैं। इन गांवों से माता–पिता के साथ–साथ बच्चों का पलायन भी देखा जा सकता है।

केन्द्रों में पढ़ने वाले बच्चे भी लगभग इसी पृष्ठभूमि से आते हैं। ये बच्चे भी ज़रूरत के समय माता–पिता के कामों में मदद करते हैं। केन्द्र पर पढ़ाने के लिए पाठ्यक्रम

लचीलापन लिए हुए है। केन्द्र पर भौतिक सामग्री एवं सुविधाएं जैसे– ब्लेक बोर्ड, स्टेशनरी, जाज़म, अलमारी, संदूक आदि सेवामन्दिर द्वारा उपलब्ध कराई गई हैं। साथ ही शैक्षिक सामग्री के अन्तर्गत बच्चों की कहानियों, कविताओं आदि की किताबें, खेल के सामान जैसे– सांप–सीढ़ी, लकड़ी से बनी आकृतियां, केरम, ब्लॉक्स आदि दिए जाते हैं, जिनसे बच्चे खुद जोड़–तोड़ कर स्वयं सीखने की प्रक्रिया में हिस्सा लेते हैं। केन्द्र पर बच्चों की संख्या औसतन 30–35 होती है।

एक अनुमान के अनुसार एनएफई केन्द्रों में पढ़ने वाले बच्चों की संख्या पांच हज़ार है। इनमें से लगभग आधी संख्या लड़कियों की है। केंद्र में आने वाले बच्चों को तीन समूहों में बांटा गया है। "ए" समूह में बच्चे शब्दों, अक्षरों, चित्रों व ब्लॉक के साथ खेलते हैं। "ब" स्तर के बच्चे छोटे–छोटे वाक्यों और उनके शब्दों का पहचानना सामान्य अंकों के साथ खेलना आदि कार्य करते हैं। "सी" स्तर के बच्चे पढ़ पाते हैं। वाक्यों को लिख पाते हैं और सामान्य संक्रिया करना आदि करते हैं।

केंद्र की मूल्यांकन प्रक्रिया भी फर्क है। एक ही प्रश्नपत्र सभी बच्चों को दिया जाता है। प्रश्नपत्र का निर्माण इस प्रकार से किया जाता है कि बच्चों की क्षमताओं को जांचा जा सके। मूल्यांकन द्वारा यह पता लगाने की कोशिश करते हैं कि बच्चे किस स्तर पर रहेंगे। इस प्रकार यह मूल्यांकन बच्चों को सीखने में मदद करता है, साथ ही परीक्षा के भय से मुक्त रहता है। इस तरह ये केन्द्र बहुस्तरीय शिक्षण का एक अच्छा उदाहरण है।

चित्र : सेवा मंदिर द्वारा प्रकाशित न्यूज़लेटर के सौजन्य से

गांवों की मूलभूत समस्याओं जैसे कि दूर से पानी ढोकर लाना, बिजली का न होना आदि से जूझते रहने के बावजूद अनुदेशकों में बच्चों को पढ़ाने के प्रति ललक उल्लेखनीय है। बच्चो को भाषा व गणित की अवधारणाओं को विभिन्न क्रियाकलापों एवं गतिविधियों के माध्यम से, आस–पास के अनुभवों से जोड़ते हुए पढ़ाने का प्रयास करते हैं। इन सबके साथ स्वयं उनकी पढ़ने के प्रति जिज्ञासा, रुचि, प्रवृत्ति देखते ही बनती है। हालांकि दैनिक गतिविधियों के दौरान अनुदेशकों को लिखने–पढ़ने का अवसर बहुत कम मिलता है। नियमित रूप से पढ़ने के नाम पर वे महीने में 4–5 बार अखबार ही पढ़ पाते हैं इसी बात को ध्यान में रखकर अनुदेशकों के शैक्षिक उन्नयन के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है जिसमें उनकी लिखने–पढ़ने की क्षमता को बढ़ाने एवं बच्चों की सीखने की प्रक्रिया के बारे में समझ बनाने का प्रयास किया जाता है।

इन केन्द्रों की मॉनिटरिंग, प्रशिक्षण और सामग्री निर्माण आदि में विद्या भवन का सहयोग हमेशा से रहा है।

प्रशिक्षण के बीच का समय अन्तराल कहीं न कहीं अनुदेशक के नियमित रूप से पढ़ पाने में बाधक होता है। इस अन्तराल को भरने के लिए अनुदेशकों के लिए विद्या भवन द्वारा एक कोर्स बनाया गया है जिसमें अनुदेशकों की भाषा व गणित की क्षमता, पढ़ने–पढ़ाने की प्रक्रिया की समझ, बच्चों के सीखने की प्रक्रिया की समझ पर ध्यान दिया जा रहा है। कोर्स के पीछे मुख्य रूप से यही सोच है कि अनुदेशक स्वाधिगामी (self learner) बने। वे खुद से पढ़ने, लिखने, समझने के लिए तत्पर हों। कोर्स के तहत अनुदेशकों को भाषा, गणित एवं बच्चों के सीखने की प्रक्रिया से संबंधित वर्कशीट दी जाती है, जिन्हें वे घर से करके लाते हैं। इन वर्कशीट में आए उत्तरों या प्रतिक्रियाओं के आधार पर ट्यूटोरियल आयोजित किया जाता है। अन्त में उनका लिखित परीक्षण लिया जाता है। कोर्स के तीन स्तर हैं जिन्हें पूरा करने पर हम कह पाएंगे कि अनुदेशक की क्षमता का वर्द्धन हुआ है।

ज्योति चौरड़िया, विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र, उदयपुर।

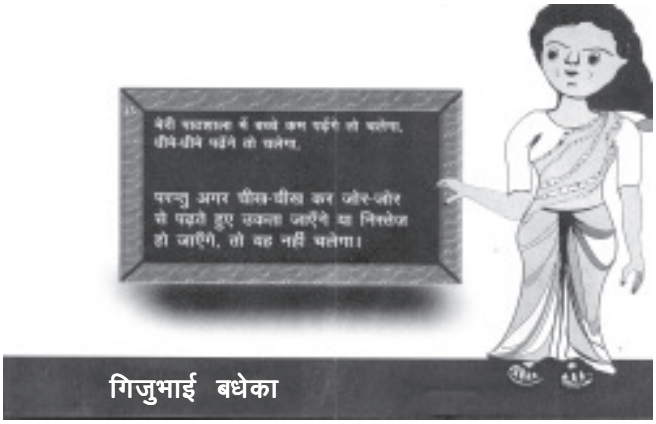

गिजुभाई बधेका

खिड़की में खड़ी एक लड़की

एक बार तोत्तोचान को स्कूल के प्रधानपाठक ने कहा था कि तुम एक अच्छी लड़की हो। यह बात तोत्तोचान को हर समय याद आती थी और वो फूले नहीं समाती थी। तोत्तोचान जब स्कूल जाने लगी तो उसके ये शब्द होते थे कि मैं काफी खुश हूं। तोत्तोचान के लिए यहां काफी आजादी तो थी ही साथ ही उसके लिए सीखने के भरपूर मौके भी थे।

तोत्तोचान महज बच्ची का नाम ही नहीं बल्कि आज शिक्षा के क्षेत्र में मिसाल बन चुकी है। जो शिक्षा में बदलाव की दिशा में अपने आपको निराश पाते हैं उनको इस उदाहरण से सबक लेना चाहिए। वास्तव में तोत्तोचान के स्कूल के और बचपन के अनुभवों को एक पुस्तक में समेटा गया है। जापान में जन्मी तोत्तोचान नामक बच्ची के स्कूली अनुभवों पर खिड़की में खड़ी लड़की पुस्तक प्रकाशित हुई तो इसकी कोई 60 हजार प्रतियां हाथों–हाथ बिक गईं। इस पुस्तक को जब कारावास काट रही हाई स्कूल की बच्ची ने पढ़ा तो उसने पुस्तक की लेखिका को एक पत्र लिखा कि यदि मैं भी तोत्तोचान के समान स्कूल में पढ़ती और मुझे उस स्कूल के समान शिक्षक मिलते तो शायद मैं आज जेल में नहीं होती।

वास्तव में सात साल की तोत्तोचान को जब किसी अच्छी समझी जाने वाली स्कूल में भर्ती किया जाता है तो अनुभव बड़े ही खट्टे थे। कुछ ही दिनों में उसको स्कूल से बेदख़ल कर दिया जाता है। तोत्तोचान की मां चिंतित हो जाती है। यों हमारे यहां पर हर माता–पिता चाहते हैं कि अपने बच्चों को बेहतर शिक्षा मिले। इसके लिए माता–पिता मोटी फीस अदा करते हैं, फिर भी अपने बच्चों को बेहतर शिक्षा न मिल पाने के कारण परेशान दिखाई देते हैं। आम बच्ची की तरह ही तोत्तोचान नामक बच्ची जो बचपन की तमाम खूबियों को समेटे हुए यानेकि चंचल, प्रखर कल्पनाशील, जिज्ञासु और अपने आसपास की दुनिया को समझने के लिए बड़ों से तुतलाती जबान में करती सवाल, जब स्कूल में भर्ती कर दी जाती है तो स्कूल उस बच्ची की तमाम उधमों को हजम करने में नाकमयाब रहता है। तोत्तोचान को स्कूल अनुशासन के शिंकजे में बांधकर रखना चाहता है। तोत्तोचान की मां जब स्कूल की हैड मिस्ट्रेस से मिलने जाती है तो वो उसके सामने तोत्तोचान के द्वारा कक्षा में की उधम की फेहरिस्त सामने रख देती है। तोत्तोचान की मां अपनी बच्ची के द्वारा की गई हरकतों को जानना चाहती है। इस पर इस स्कूल की हैड मिस्ट्रेस तोत्तो चान की मां को बताती है कि 'इस बच्ची की कोई एक समस्या हो तो बताऊं।' हैड मिस्ट्रेस बताती है कि यह बच्ची कक्षा में अपनी मेज की ड्रावर को बार–बार खोलती है और बंद करती है। उस बच्ची को मना करने के बावजूद भी बार–बार वो ऐसी हरकत करती है। कभी वो अपनी कॉपी निकालेगी तो कभी वापस रखेगी।

अगली बार वो उसमें से पेंसिल निकालकर वापस बंद करेगी। और अगले ही पल पेंसिल से लिखे को मिटाने के लिए रबर निकालने के लिए खोलेगी। अक्षर को मिटा कर फिर से ड्रावर को खोलकर उसमें रबर रखेगी और फिर से बंद करेगी और फिर खोलकर उसमें से पेंसिल निकाल कर लिखने लगेगी। अगली बार फिर से यही प्रक्रिया को दोहराती है।

टीचर ने अगली शिकायत करते हुए कहा कि यह तो छोटी सी बात है आगे और इसकी हरकतों को सुनाती हूं। तोत्तोचान की मां को उस स्कूल की टीचर सुनाती है कि यह बच्ची कक्षा की खिड़की में खड़े होकर सड़क पर जा रहे राहगिरों से बातचीत करती है। रास्ते से गुजर रहे बाजे बजाने वालों से बातें करती है। इतना ही नहीं कई बार तो वो किसी इंसान से नहीं बल्कि गौरेया से बातें कर रही होती है। तोत्तोचान की मां कुछ कहें इसके पहले ही टीचर कहती है कि बच्ची को जो काम कहा जाता है वो नहीं करती। वो तो अपनी मर्जी का काम करती है। जब सभी बच्चों को कहा कि वो जापानी झंडा बनाए तो उसने बात न मानते हुए सेना का झंडा बना डाला। ऐसी कितनी ही समस्याएं टीचर ने तोत्तोचान की मां को कह सुनाई जो एक बालक या बालिका के लिए सहज क्रिया होती है। दरअसल तोत्तोचान को उस मेज की ड्रावर खूब पसंद आई थी। यह बात उसने अपनी मां को भी बताई थी। मां ने भी उस बच्ची के बालमन को पढ़कर यही समझा कि वाकई उसको इस काम में मजा आता होगा।

बहरहाल तोत्तोचान को उस स्कूल से बेदखल कर दिया जाता है। तोत्तोचान की मां इस बात को समझती है कि वास्तव में इस सीमेंट–कांक्रिट से बनी स्कूल में बच्चों की भावनाओं की कदर नहीं है। तोत्तोचान की मां को यह चिंता सताती है कि आखिर उसको क्या बेहतर स्कूल मिल पाएगी? क्या उसको अपनी मर्जी का काम करने की छूट दे पाएगी कोई स्कूल।

तोत्तोचान की मां ने एक ऐसे स्कूल की खोज की जो बच्चों में उन क्षमताओं को तराशने की कोशिश करता हो। तोत्तोचान को जिस स्कूल में भर्ती किया जाता है वो कोई आलीशान स्कूल नहीं होती। तोत्तोचान की स्कूल तो पुरानी रेल के डिब्बे में लगती है। बेहतर स्कूल की कल्पना कोई बेहतर भवन बना भर देने से साकार नहीं हो सकती।

तोत्तोचान को जिस स्कूल में भर्ती किया जाता है उसका भवन उस तरह का नहीं था जो कि तोत्तोचान को पूर्व में भर्ती किए गए स्कूल का था। इस स्कूल का बाहरी द्वार दो पेड़ों का बना था। इस अनूठे द्वार को देखकर ही सात साल की तोत्तोचान खुश हो जाती है। इस स्कूल का नाम था तोमोए। तोमोए स्कूल के प्रधान पाठक कोबायासी एक सृजनशील शिक्षक थे। उनकी सृजनशीलता की झलक इस स्कूल में देखी जा सकती थी। यह स्कूल रेलगाड़ी के पुराने डिब्बों में लगता था। स्कूल क्या, बच्चों की खास जगह बन गई थी यह। स्कूल में कमरों की जगह रेल के डिब्बों में और मनचाहे तरह से पढ़ाई का होना बच्चों को भी भाता था। डर से कोसों दूर का वास्ता था। बच्चों को यहां पर पूरी छूट होती थी। तोत्तोचान का इंटर्व्यू लिया गया। तोत्तोचान से प्रधानपाठक ने कोई चार घंटे बात की। इस इंटर्व्यू के दौरान तोत्तोचान ही बोलती रही और सुनने वाले थे प्रधानपाठक कोबायासी। तोत्तोचान को पहली बार में ही स्कूल जंच गया था। सच तो यह है कि जिस तरह के सीमेंट कांक्रिट के आलीशान भवन स्कूल की संज्ञा तो प्राप्त कर लेते हैं लेकिन विशेषण नहीं बन पाते। लेकिन कोबायासी द्वारा रचा गया स्कूल सही मायनों में बच्चों का सम्मान करता था और उनकी हर हरकतों को पचा पाने की क्षमता रखता था।

तोत्तोचान जिन हरकतों के कारण स्कूल से निकाली गई थी वहीं इस स्कूल में उसकी मनपंसद का काम करने की छूट होती थी। इतना ही नहीं कोई भी बच्चा अपने टीचर से कभी भी बातचीत कर सकता था। हर किसम के सवाल कर सकता था। यहां पर बच्चे अनुशासन के बोझ तले नहीं दबे जा रहे थे। हर बच्चा आज़ाद होता था। लीक से हटकर इस स्कूल में बालमन की कल्पनाओं को साकार करने की कोशिशें की गई थीं। उन तमाम छोटी और बड़ी बातों को जो कि बच्चों की भावनाओं से जुड़ी होती थीं उनका ध्यान रखा जाता था। प्रचलित मान्यताओं में भरोसा करने वालों को यह अटपटा सा भी लग सकता है कि उस स्कूल के बच्चे अपने शिक्षक और प्रधानपाठक से लिपट जाते थे।

बच्चों के मां–बाप को इस बात के लिए कहा जाता था कि उनको नए कपड़े पहनाकर स्कूल न भेजें। इसकी वजह यह थी कि बच्चे यदि नए कपड़े पहन कर स्कूल में आएंगे तो वो गंदे होने के कारण खेल नहीं पाएंगे। आमतौर पर स्कूल में पढ़ाई का मतलब होता है कि पीरियड लगे, कक्षा में शिक्षक पहुंचा या पहुंची, बच्चों से आदेशात्मक तरीके से पाठ्यपुस्तकें खुलवाई और पाठ का अध्यापन करवा दिया। यह सब कुछ मशीनीकृत तरीकों से होता है। लेकिन तोत्तोचान के इस स्कूल में उन तमाम प्रचलित मान्यताओं को दरकिनार करके वो तरीके अपनाए जाते थे जिनसे . ..कल के नागरिक का निर्माण हो सके। तोमोए स्कूल में बच्चों को कोई दंड नही दिया जाता था। बच्चों को आपस में प्रेम करना सिखाया जाता था।

एक बार तोत्तोचान को स्कूल के प्रधानपाठक ने कहा था कि तुम एक अच्छी लड़की हो। यह बात तोत्तोचान को हर समय याद आती थी और वो फूले नहीं समाती थी। तोत्तोचान जब स्कूल जाने लगी तो उसके ये शब्द होते थे कि मैं काफी खुश हूं। तोत्तोचान के लिए यहां काफी आजादी तो थी ही साथ ही उसके लिए सीखने के भरपूर मौके भी थे। हर पल पर उसको चुनौतियां परोसी जाती थी और हर बच्चे को उन चुनौतियों को पूरा करना होता था। यह विडंबना की बात है कि आज हमारे स्कूल बच्चों की हर गलती पर मानसिक और शारीरिक सजा देने से नहीं चूकते और गलती करने को अपराध से कम नहीं माना जाता। लेकिन इस स्कूल में तो गलती करने पर उसके कारणों पर चर्चा होती थी। आगे से गलती न हो इस पर

बच्चों को खुद सोचने और समझने के मौके दिए जाते थे। ऐसा ही एक वाकया हुआ था तोत्तोचान के साथ। एक बार तोत्तोचान का बटुआ पाखाने में गिर पड़ा। उस बटुए से तोत्तोचान को काफी लगाव था। दरअसल तोत्तोचान की मां उसको हमेशा पाखाने के छेद में झांकने से रोकती थी। लेकिन तोत्तोचान को उसकी मां की यह बात समझ में नहीं आई थी। तोत्तोचान को

लगा कि वो अपने प्यारे से बटुए को हर हाल में पाखाने में से निकालना चाहेगी। वह स्कूल के पिछवाड़े पहुंची और पाखाने के गड्ढे में गिरे उस बटुए को ढूंढ़ने की कोशिश करने लगी। काम काफी मुश्किल था। उसने उस गड्ढे में से गंदा बाहर निकालना शुरू किया। इतने में स्कूल के प्रधानपाठक पहुंच जाते हैं। तोत्तोचान से पूछते हैं कि ''यह क्या कर रही हो''? इस पर तोत्तोचान बताती है कि उसका बटुआ जो गिर गया है उसको निकाल रही है। इस पर उसके प्रधानपाठक बड़े ही इत्मिनान से कहते हैं कि यह तुम जो भी गंदा बाहर निकाल रही हो इसको वापस उसी गड्ढे में डालोगी ना! इस पर तोत्तो चान को काफी संतोष हुआ कि उसके प्रधानपाठक ने उसको डांटा तो नहीं। इस तरह के काम यदि कोई बच्चा करें तो शायद उसकी अच्छी–खासी पिटाई हो जाती। उसने अपने इस काम को दुगुने उत्साह के साथ बरकरार रखा। तोत्तोचान अपने प्यारे से बटुए को आखिर ढूंढ़ पाने में असफल पाती है। लेकिन इससे उसने काफी कुछ सीखा। उसने उस गड्ढे को ज्यों का त्यों बंद किया। दुःखी मन से वो इस काम से हट जाती है। इस घटना से कई सारे सबक सीखे जा सकते हैं। वास्तव में तोत्तोचान को इस स्थिति में पाकर कोई भी बड़ा व्यक्ति डांट–डपट करने से नहीं चूकता। कोई और होता तो उसको इस काम से मना कर देता। या कि उसके बटुए को किसी ओर से निकलवाने की कोशिश करता। इस स्कूल में ऐसे कितने ही मामलों में बच्चों को सही–गलत का भाषण देने के बजाए उनको जमीनी हकीकतों से अहसास कराने की कोशिश की जाती थी। वास्तव में तोत्तोचान जब भी पाखाने जाती तो गड्ढे में झांकने की आदत थी। उसको उसकी मां हमेशा मना करती थी। लेकिन जब स्कूल में उसके साथ यह घटना घटी उसके बाद उसने पाखाने के गड्ढे में झांकना बंद कर दिया था।

तोत्तोचान की स्कूल में बाल मानसिकता का काफी ध्यान रखा जाता था। कोबायासी मानते थे कि यदि बच्चों को अपने मनमर्जी से लिखने और चित्रकारी करने के मौके उपलब्ध कराए जाएं तो बच्चे स्कूल के बाहर कहीं पर भी फालतू की चित्रकारी नहीं करते। वास्तव में इस बात को समझने वाले कम ही लोग हैं। आज यदि हम देखें तो पाएंगे कि रेल्वे के टॉयलेट में या सार्वजनिक स्थानों पर पढ़े–लिखों की विकृत कारनामों की मिसालें देखी जा सकती है। यही कारण हैं कि तोत्तोचान की उस स्कूल में दीवारों पर बच्चों को अपनी मर्जी से चित्रकारी करने के मौके दिए जाते थे।

वास्तव में तोमोए स्कूल सही मायने में शिक्षा का केंद्र रहा है। बच्चों को जो भी पढ़ाया जाता उसका अपनी जिंदगी से जुड़ाव बने इसका ध्यान रखा जाता था। खेल और शिक्षा को एक साथ जोड़कर देखा जाता था। बच्चों पर किताबों का बोझ नहीं के बराबर था। इतना ही नहीं बच्चों की असफलता पर मजाक नहीं बनाया जाता था। पुरस्कार और पनिश्मेंट से परे यहां बच्चे सहज होकर सीखते थे। उनके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करके प्रेम का पाठ पढ़ाया जाता था। यह स्कूल परीक्षा केन्द्रित शिक्षा देने का सख्त विरोधी था। इस उदाहरण से शिक्षा जगत को और हर माता–पिता को काफी कुछ सीखने और सबक लेने की जरूरत है।

तोत्तोचान एक ऐसी लड़की है जो सारी दुनिया के बच्चों का प्रतिनिधित्व करती है और शिक्षा शास्त्र पर खड़ी होकर हर किसी को चुनौती दे रही है कि हर घर और स्कूल में मौजूद उस तोत्तोचान की भावनाओं की कदर की जाए।

समरहिल यानेकि बच्चों को पूरी आज़ादी

समरहिल यानेकि एक ऐसा स्कूल ज़हां पर बच्चों को पूरी आज़ादी! इस आज़ादी के मायने ये नहीं कि बच्चे गुलामी को भी आज़ादी समझने लगे। आज के संदर्भ में समरहिल एक ऐसा स्कूल है जो बच्चों को सही मायनों में आज़ादी देता है। सही पूछें तो इस स्कूल में बच्चों को आज़ादी दिए जाने के कारण न तो उनमें कोई गलत आदतें पड़ी और न ही स्कूल का कोई नुकसान हुआ। समरहिल स्कूल को रचने वाले ए.एस. नील एक हिम्मत वाले और जुझारू किसम के शिक्षाविद् रहे हैं। आमतौर पर शिक्षा के क्षेत्र में प्याज़ की तरह छिलके उतारने वाले तो मिल जाएंगे लेकिन असल में काम करने वालों का टोटा ही है। ए. एस. नील का समरहिल उन तथाकथित प्रचलित दकियानुसी मान्यताओं को ठेंगा दिखाते हुए एक अद्भूत स्कूल के रूप में जाना जाता है। समरहिल की स्थापना करने वाले नील का जन्म 1883 में स्कॉटलेंड में हुआ था। नील रूसो के विचारों से काफी प्रभावित थे। नील ने समरहिल की स्थापना 1921 में की। नील ने इंग्लैंड के सफोल्क क्षेत्र के लाइस्टन गांव में इस स्कूल की नींव रखी जो कि आज भी बदस्तूर जारी है। समरहिल के नाम से प्रसिद्ध यह स्कूल शिक्षा में नवाचार का एक ऐसा केंद्र बन पाया ज़हां तथाकथित शिक्षा के सिद्धांतों और प्रचलित मान्यताओं को दरकिनार करके कुछ नया कर दिखाया।

वास्तव में समरहिल एक ऐसी स्कूल है जो कि केवल पुस्तकीय ज्ञान का वाहक ही नहीं है बल्कि यह तो सच्चे अर्थों में बालक के संपूर्ण व्यक्तित्व को निखारने की दिशा में प्रयास करता है। आज जहां स्कूली शिक्षा का व्यापारीकरण होता जा रहा है, जहां सही अर्थों में पढ़ने–पढ़ाने को लेकर स्पीडब्रेकर लग गए हैं और ऊपर से नैतिक पतन तो हो ही रहा है, ऐसे में समरहिल के बारे में बात करना अपने आप में एक सुखद संयोग ही होगा। दरअसल समरहिल की कई खूबियों में से एक यह रही है कि वह बच्चों पर यंत्रवत अनुशासन और आज्ञाकारिता पर जबर्दस्त प्रहार करती है, और शिक्षक के अंदर से हिटलरी प्रवृति को खत्म करके बच्चों को कहीं ज्यादा आज़ाद रखने की कोशिश करती है। समरहिल महज़ एक स्कूल ही नहीं बल्कि विचार बन चुका है।

समरहिल एक ऐसा स्कूल है जो नियम बनाता है तो बच्चों के लिए। नियम भी ऐसे कि जिनको बदला जा सके। इस लिहाज़ से समरहिल के नायक ए.एस. नील एक ऐसी शख्सियत हैं जो न अपने विचारों को महज़ थोपते हैं बल्कि वो तो अपने तर्कशील विचारों को यथार्थ में एक स्कूल के माध्यम से रोपते भी हैं। समरहिल के माध्यम से नील स्कूली शिक्षा में कई सारे प्रयोग करते हैं। अपने द्वारा किए गए प्रयोग को वे एक स्कूल के माध्यम से चलाकर यह साबित करते हैं कि कथनी और करनी में कोई फर्क नहीं है। नील कहते हैं कि जब उन्होंने स्कूल प्रारंभ किया तो कई दकियानुसी लोग कहते थकते नहीं थे कि यह तो उनकी मनमर्जी का स्कूल है। दरअसल वो कहीं और बेढंगे तरीके से कहते थे कि यह तो जंगली लोगों का स्कूल है जहां न कोई कायदा–कानून है और न ही शिष्टाचार। दरअसल जब–जब भी तमाम पूर्वाग्रहों को दरकिनार करके शिक्षा में काम किया है तब–तब बच्चों को सुकून मिला है और उनकी सहज रूप से सीखने की प्रक्रियाएं बेहतर बनी है। नील इसके सख्त खिलाफ हैं कि सक्रिय बच्चों को मेजों पर बिठाकर दिन भर निरर्थक विषय पढ़ाए जाएं। दरअसल ऐसे स्कूल उन लोगों के लिए अच्छे हो सकते हैं जो रचनाहीन और आज्ञाकारी बच्चे चाहते हैं और जो एक ऐसी सभ्यता का हिस्सा बन सकें जहां सफलता का एक ही मानक होगा–पैसा।

समरहिल की एक खूबी यह भी रही है कि बच्चों को स्कूल के अनुरूप ढालने के बदले स्कूल को बच्चों के लायक बनाया जाए। जहां बच्चे फिट न किए जाएं, स्कूल का वातावरण बच्चों के माकूल हो। इसके लिए नील ने हर तरह का अनुशासन, निर्देशन, सुझाव देना, नैतिक और धार्मिक उपदेश देने का मोह त्यागा। नील कहते हैं कि बच्चा दुष्ट नहीं होता, अच्छा ही होता है। नील के चालीस साल के अनुभव में बच्चों की अच्छाई में भरोसा कभी नहीं डिगा। यह कहने में कोई बेमानी नहीं होनी चाहिए कि समरहिल दुनिया का सबसे खुश स्कूल है। इस स्कूल का एक मकसद है कि हर किसी में प्यार पनपाओ। हर कोई एक दूसरे से प्यार करें।

समरहिल में कोरी किताबी ज्ञान को ही तव्वजौ नहीं दिया जाता बल्कि यहां तो जीवन जीने के तरीके सिखाए जाते हैं। यहां पर बच्चे में जो भी क्षमताएं हैं उनको आकने की और उनको तराशने की कोशिशें की जाती हैं। नील कहते हैं कि हमारे बारह साल के बच्चे अपनी उम्र के दूसरे बच्चों से सुलेख, वर्तनी या भिन्न के हिसाब से उनकी बराबरी न कर पाए लेकिन यदि ऐसी कोई परीक्षा हो जिसमें मौलिकता की

जरूरत हो तो हमारे बच्चे दूसरों को पछाड़ सकते हैं। समरहिल तथाकथित परीक्षाओं का विरोध करता है। इस स्कूल की एक खूबी यह भी है कि यहां पर 'बच्चा राज' चलता है। इस स्कूल के बच्चे शिक्षक से नहीं डरते। शिक्षक और बच्चों में किसी तरह की कोई गैरबराबरी नहीं। नील कहते हैं कि मेरे पियानो तक आने की किसी को अनुमति नहीं हैं। लेकिन मैं भी किसी बच्चे की सायकिल को बिना अनुमति के छू भी नहीं सकता। इतना ही नहीं स्कूल की छह साल की बच्ची के मत को भी उतना ही महत्व दिया जाता है जितना नील के मत को। नील कहते हैं कि यह मामला इतना आसान नहीं हैं। बच्चों में डर का कोई स्थान ही नहीं है। यही कारण है कि हर बच्चा बिना डर के हर उस बड़े की बात पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने का साहस जुटा पाता है।

आखिर शिक्षा के मायने क्या हैं? नील मानते हैं कि जीवन का लक्ष्य है आंनद हासिल करना। दरअसल शिक्षा जीवन की तैयारी होना चाहिए। लेकिन यह विडंबना की बात है कि हमारी शिक्षा राजनीति और अर्थव्यवस्था युध्द की ओर ले जाती है। नील मानते हैं कि बच्चों की भावनाओं का ख्याल करना चाहिए। उनको एक अच्छा इंसान बनाने का मतलब यही होगा कि वे अपनी बात को हक़ के साथ कह सकें। नील कोई बहुत आदर्शों की बात नहीं करते। नील तो यह कहते हैं कि ये कल के भावी नागरिक बच्चे खुश रह सकें। इस खुशी का मतलब यह है कि जीवन में संतोष अनुभव करना, आनंदपूर्वक और संतुलित रूप से रहना। यही कारण है कि नील अपने स्कूल समरहिल में न तो नैतिकता का पाठ पढ़ाते हैं और न ही उनको कमरे की चहारदीवारी में बंद करके पाठों को कंठस्थ कराने का ढोंग करते हैं। समरहिल में माहौल एकदम अनौपचारिक सा होता है। यदि कोई बच्चा कोई चीज़ नहीं सीखना चाहता तो उस पर कोई जोर जबर्दस्ती नहीं होती। यहां कई तरह की गतिविधियां होती हैं। नील मानते हैं छोटे बच्चो को किताब से शिक्षा देने का मतलब उनके लिए परेशानी पैदा करना है। यही कारण है कि यहां पर ज़्यादा ज़ोर गतिविधियों पर दिया जाता है। नील ने एक अत्यंत संवेदनशील मसले की ओर ईशारा किया है कि बच्चों के संदर्भ में जो भी क्रियाकलाप होते हैं वे बच्चे के गर्दन के ऊपरी भाग के लिए होते है। लेकिन बाकी शरीर के लिए कोई गतिविधियां नहीं होती। नील मानते हैं कि बच्चे आपस में संवाद से भी काफी कुछ सीखते हैं। यही कारण है कि समरहिल में हर तरह के मुद्दों पर खुलकर चर्चा होती है। हमारे यहां एक बात देखने में आती है कि विज्ञान में जब भी किसी जंतु के प्रजनन तंत्र की बात आती है तो शिक्षक भी इस मामले को रफ़ा–दफ़ा करने की कोशिश में होता है। वह चाहता है कि किसी तरह से यह मामला टल जाए। कमोबेश यही हाल होता है घर में भी। जबकि इस मामले में स्कूल और घर में बच्चों के साथ कहीं ज़्यादा चर्चा होनी चाहिए। लेकिन हम वयस्क यह मानकर चलते हैं कि सेक्स का मामला अपने आप में घिनौना और गंदा होता है। विडंबना की बात तो यह है कि महाविद्यालय स्तर पर भी विद्यार्थियों के साथ इस मामले में कोई सार्थक चर्चा हो नहीं पाती है। समरहिल इस मामले में काफी संवेदनशील रहा है। यहां के बच्चों के साथ बच्चों का सेक्स के प्रति क्या नज़रिया है इस पर खुलकर चर्चा होती है। इतना ही नहीं समरहिल अश्लील साहित्य नग्नता, हास्य, समलैंगिकता, उच्छृंखलता, अवैधता और गर्भपात आदि पर भी बेबाक रूप से अपने विचार व्यक्त करते हैं। समरहिल धर्म की शिक्षा भी नहीं देता।

नील ने समरहिल में बच्चे की हर क्रिया–कलाप को बारिकी से देखा और समझा है। नील का मानना है कि शिक्षा में महज़ बौद्धिक विकास पर्याप्त नहीं है। शिक्षा बौद्धिक के साथ भावनात्मक भी हो, यह नितांत ज़रूरी है। आधुनिक समाज में बुद्धि और भावना में फर्क बढ़ता जा रहा है। आज मानव के अनुभव उसकी आंतरिक भावनाओं से आंखों से देखकर या कानों से सुनकर नहीं होते। वे अनुभव खासकर दिमागी होते हैं। बुद्धि और भावनाओं का यह फासला व्यक्ति में ऐसी खंडित मानसिकता पैदा करता है जो उसको वैचारिक अनुभव ही पाने देता है।

विडंबना की बात तो यही है कि मां–बाप के लिए भी यह ज़रूरी है कि वे यह समझें कि आखिर बच्चों के साथ किस तरह से बर्ताव करें। नील ने समरहिल स्कूल का संचालन 1973 तक मरते दम तक किया। उसके बाद उनकी दूसरी पत्नी एना ने 1985 तक इसका काम–काज देखा। अब इन दिनों उनकी बेटी जोई स्कूल की तमाम गतिविधियों पर नज़र रखे हुए हैं।

समरहिल स्कूल आज भी ज़िंदा है। समरहिल एक आवासीय स्कूल रहा है। दरअसल यहां पर बच्चों की संख्या अधिक नहीं रही। इन दिनों समरहिल में कोई 60–70 बच्चे पढ़ते हैं। लीक से हटकर कोई भी काम किया जाता है तो उस पर कई तरह के आरोप लगते हैं। समरहिल भी इससे अछूता नहीं रहा। अनेकों बार ब्रिटिश सरकार ने समरहिल को लेकर असंतोष व्यक्त किया और इसको बंद करने के प्रयास किए हैं। लेकिन समरहिल उन सभी बाधाओं को पार करते हुए आज भी विद्यमान है। समरहिल के नायक नील ''समरहिल के भविष्य'' शीर्षक के तहत कहते हैं कि समरहिल में जो कुछ भी मैंने प्रयोग किए ज़रूरी नहीं कि उनको किसी अन्य स्कूल में अपनाए जाएं। नील यह भी कहते हैं कि यह भी ज़रूरी नहीं कि दुनिया में समरहिल की शिक्षण पद्धति को अपनाकर उनको लंबे समय तक चलाया जा सकेगा। नील की यह बात काबिलेतारिफ है कि शिक्षा में काम करने वालों को यह नहीं सोचना चाहिए कि उनका काम शिक्षा में अंतिम काम है। नील यह भी मानते हैं कि समरहिल का भविष्य इतना महत्वपूर्ण नहीं है। लेकिन समरहिल के मूल विचार का भविष्य मानवता के लिए अति महत्त्वपूर्ण है।

Ldy % D;k dgr g vkdM\

डीआइएसई (DISE) के आंकड़ों को देखने पर पता चलता है कि हमारे देश में वर्ष 2005–06 के अनुसार 11,24,033 स्कूलें हैं। स्कूलों की यह संख्या 2002–2003 में 8,53,601 थी। ज़ाहिर है कि स्कूलों की संख्या में बढ़ोतरी होती जा रही है।

तालिका के अनुसार वर्ष 2005–06 में ग्रामीण क्षेत्रों में 9,80,526 स्कूलें हैं।

वर्ष	जिलों की संख्या	प्राथमिक	प्राथमिक, उच्च प्राथमिक के साथ	प्राथमिक, उच्च प्रथामिक के साथ और सै.,हा.सै.	उच्च प्रा.	उच्च.प्राथमिक सै. एवं हा.सै.	कोई जवाब नहीं	कुल स्कूल	ग्रामीण क्षेत्र में स्थित स्कूल
2002-03	461	601866	131558	18598	50878	35330	15371	853601	742633
2003-04	539	637469	153096	19531	63779	45716	11880	931471	811520
2004-05	581	693030	179094	23723	71880	58970	11116	1037813	901824
2005-06	604	738150	199946	27907	89164	60306	8560	1124033	980526

rkfydk 1 % Ldyka dh l[;k

अध्यापकों की संख्या	प्राथमिक स्कूल			सभी स्कूल		
	सभी क्षेत्र	ग्रामीण	शहरी	सभी क्षेत्र	ग्रामीण	शहरी
0	1.29	1.18	2.39	2.07	1.39	3.53
1	16.58	17.47	7.37	12.17	13.35	4.23
2	39.37	41.02	22.26	28.67	31.11	12.26
3	19.08	19.44	15.38	15.83	16.81	9.44
3 से ज्यादा 2005-06 में	23.68	20.89	52.60	41.26	37.34	70.54
4	10.38	10.00	14.26	10.43	10.55	9.89
5	5.97	5.31	12.83	8.07	7.78	10.36
6	2.72	2.32	6.79	5.32	5.09	7.12
7	1.52	1.25	4.30	4.26	3.93	6.75
8	1.03	0.78	3.60	3.72	3.23	7.32
9	0.58	0.41	2.32	2.27	1.87	5.19
10	0.44	0.29	1.97	1.93	1.45	5.35
10 से ज्यादा 2005-06 में	1.05	0.52	6.55	5.26	3.43	18.48
10 से ज्यादा 2004-05 में	1.09	0.53	6.93	5.06	3.22	18.68
10 से ज्यादा 2003-04 में	0.89	0.44	5.66	4.63	3.01	17.17

rkfydk 2 % Ldyka e f'k{kdka dh l[;k ¼ifr'kr e½

संविधान कहता है कि 6–14 साल के बच्चों को अनिवार्य रूप से शिक्षा मिलनी चाहिए। आंकड़े बताते हैं कि बड़ी संख्या में स्कूल खुलते जा रहे हैं। मगर क्या शिक्षा की गुणवत्ता पर भी ध्यान दिया जा रहा है? क्या स्कूल बच्चे को सीखने के लिए प्रेरित कर पा रहे हैं? क्या शिक्षा जीवन से जुड़ पा रही है?

सवाल यह भी है कि क्या वर्तमान शिक्षा व्यवस्था ग्रामीण पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर तैयार की जा रही है। पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें, शिक्षक प्रशिक्षण आदि में गांव का कितना ध्यान रखा जा रहा है।

हमारे देश में आज भी (भले ही ऐसी स्कूलों का प्रतिशत कम हो) ऐसे स्कूल हैं जहां शिक्षक नहीं है। मगर सरकारी भाषा में स्कूल चल रहे हैं। दूसरी ओर यह सवाल ज़्यादा पैने रूप से उभरकर आ रहा है कि शिक्षक की दक्षतावर्धन के प्रयास कितने कारगर हैं?

भारत में स्कूलों की तस्वीर

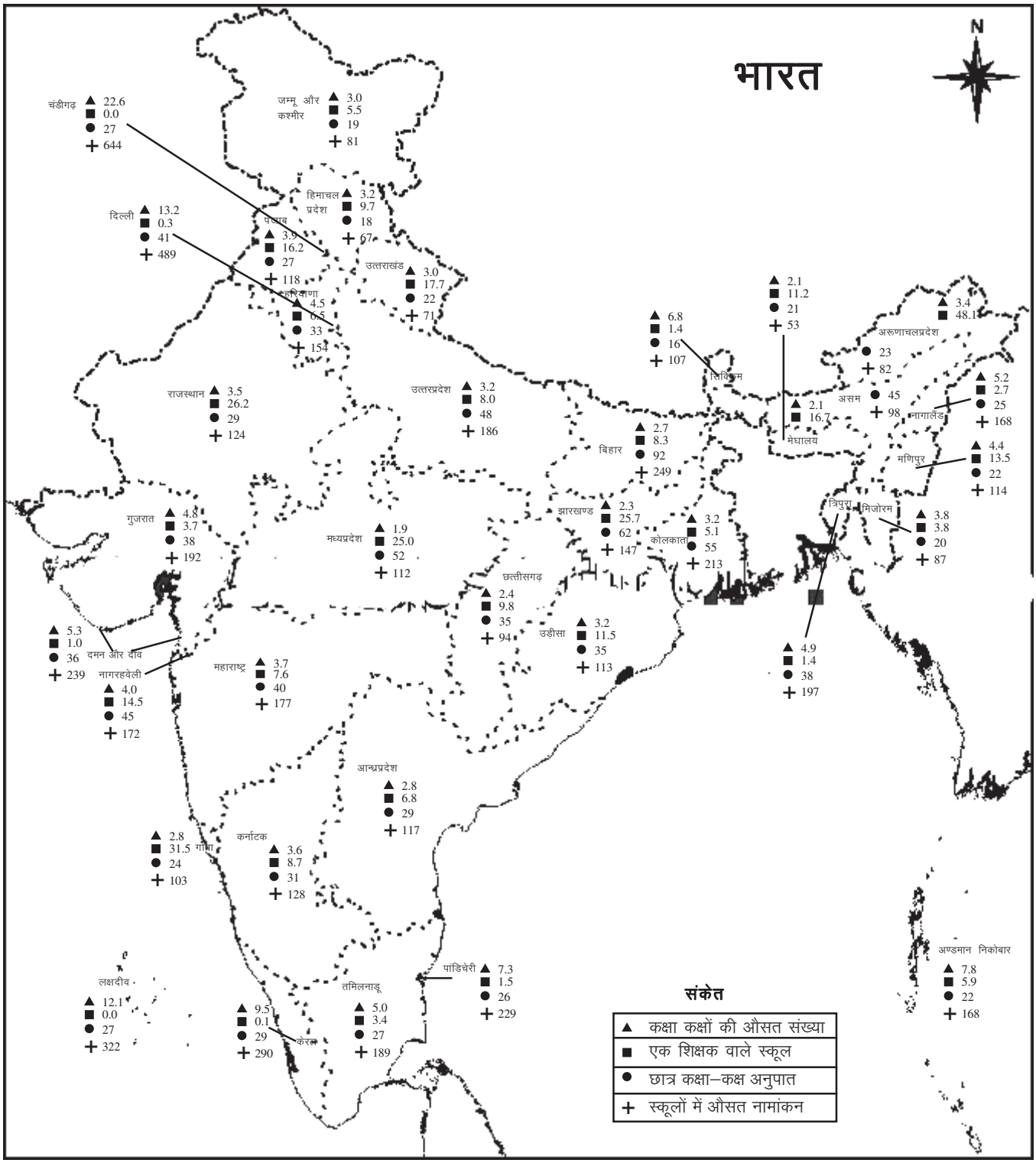

स्रोत : डीआईएसई

प्रस्तुति : **गिरीश शर्मा**

जब हम बेहतर स्कूलों की बात करते हैं तो स्कूलों में कक्षावार कमरे हों, प्रत्येक कक्षा के लिए शिक्षक हो। मगर कई स्कूलों में स्थिति अभी भी नाज़ूक बनी हुई है।

जानवरों का स्कूल : एक दन्त कथा

एक बार की बात है। जंगल के सभी जानवरों ने एक बैठक बुलाई। वे अपने लगातार जटिल होते जा रहे समाज के बारे में कोई ठोस हल खोजना चाहते थे। बैठक के अंत में सभी जानवरों ने सर्वसम्मति से एक स्कूल शुरू करने का फैसला किया।

स्कूल के पाठ्यक्रम में दौड़ना, चढ़ना, तैरना और उड़ना जैसी कुशलताएं शामिल की गई। क्योंकि ये कुशलताएं ज़्यादातर जानवरों के मूल स्वभाव का हिस्सा थीं, इसलिए सभी छात्रों के लिए इन विषयों को लेना अनिवार्य माना गया।

बत्तख तैराकी में उस्ताद निकली। वास्तव में वह अपने शिक्षक से भी ज़्यादा तेज़ निकली। वह उड़ने में भी काफी निपुण निकली। परन्तु दौड़ में उसका प्रदर्शन एकदम ख़राब रहा। इसलिए स्कूल खत्म होने के बाद दौड़ने के अभ्यास के लिए उसे रुकना पड़ता था। उसे तैराकी छोड़नी पड़ी, ताकि वह दौड़ का अधिक अभ्यास कर सके। उसे अपने कमज़ोर विषय का लगातार अभ्यास करना पड़ा। वह इतना दौड़ी कि अंत में उसके पैरों की खाल सूजकर दुखने लगी। इससे वह अच्छी तरह से तैर भी नहीं सकती थी। परन्तु स्कूल को यह मंज़ूर था। उस नन्हीं बत्तख को छोड़कर बाकी किसी को इसकी फ़िक्र न थी।

नन्हा खरगोश दौड़ में अपनी कक्षा में अव्वल आया। लेकिन स्कूल उसे तैरने के अभ्यास के लिए लगातार धकेलता रहा। खरगोश को तैराकी से एकदम नफ़रत थी। अंत में बेचारा खरगोश अपना मानसिक संतुलन ही खो बैठा।

नन्ही गिलहरी चढ़ने में चतुर और निपुण थी। परन्तु जब उड़ने की बारी आई तो उसके शिक्षक ने उससे पेड़ पर चढ़ने की बजाय ज़मीन से उड़ान भरने का आग्रह किया। उससे इस उबाऊ काम का अभ्यास बार–बार कराया गया। नतीजा यह हुआ कि बेचारी गिलहरी की मांसपेशियां जवाब दे गईं। वह अथक प्रयासों के बाद चढ़ने में पास हुई, और दौड़ में तो फेल ही हो गई।

चील स्कूल के लिए सबसे बड़ी चुनौती साबित हुई। उसने सभी नियम–कानूनों को ताक में रख दिया। उसने पेड़ों पर चढ़ने की कुशलता में सारे स्कूल को मात दे डाली। लेकिन पेड़ पर चढ़ने के लिए उसने स्कूल का नहीं, बल्कि ख़ुद का तरीक़ा अपनाया।

गौफर (बिलखोदा) नाम के जानवर स्कूल नहीं गए। बाहर रहते हुए उन्होंने अपने ऊपर लगे शिक्षा टैक्स का ज़ोरदार विरोध किया क्योंकि स्कूल में खुदाई का विषय ही नहीं था। उन्होंने अपने बच्चों को मशहूर खुदाईकर्ता बिज्जू का शागिर्द बना दिया। बाद में उन्होंने सुरंग खोदनेवाले सुअरों से प्रशिक्षण लिया। अंत में उन्होंने वैकल्पिक शिक्षा के लिए अपना प्राइवेट स्कूल शुरू किया।

एक अनाम व्यक्ति का लेख।
(वह टोरॉण्टो विश्वविद्यालय का छात्र था)

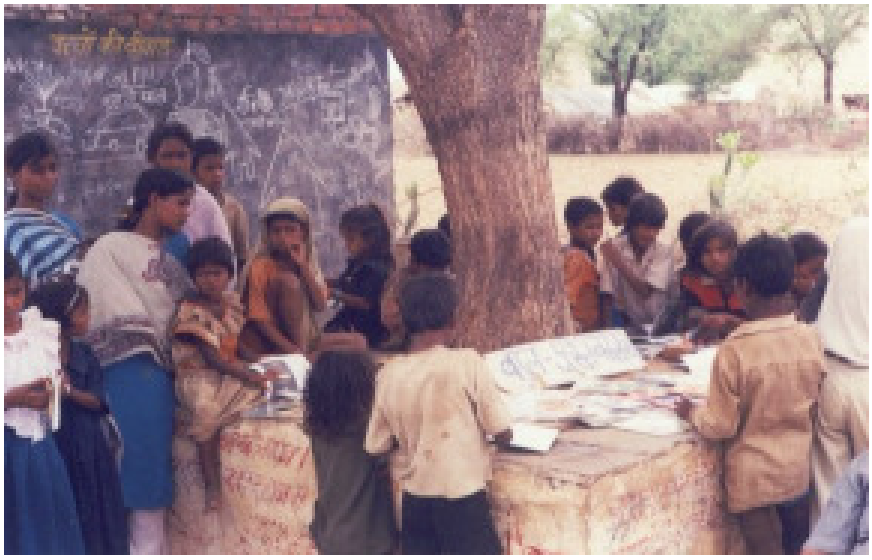

स्कूली शिक्षा की चुनिंदा किताबें

1. राज समाज और शिक्षा– कृष्ण कुमार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
2. गिजुभाई ग्रंथमाला – गिजुभाई, मोंटेसरी, बाल–शिक्षण समिति राजलदेसर, चुरू
3. पाठशाला भंग कर दो– इवान इलिच, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल
4. अध्यापक के नाम पत्र– बारबियाना स्कूल के आठ बच्चे, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
5. रवीन्द्र नाथ का शिक्षा दर्शन– रवीन्द्रनाथ ठाकुर, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
6. दीवार का इस्तेमाल– कृष्ण कुमार, एकलव्य, भोपाल
7. स्कूल पास या फेल– रेशमा भारती, भारत डोगरा सोशल चेंज पेपर्स, नई दिल्ली
8. असफल स्कूल– जॉन होल्ट, एकलव्य भोपाल
9. खतरा स्कूल– भारत ज्ञान विज्ञान समिति, नई दिल्ली
10. बचपन, किशोरावस्था, युवावस्था, रादुगा प्रकाशन, नई दिल्ली
11. समरहिल– ए.एस. नील, एकलव्य, भोपाल
12. शिक्षा और भारतीय लोकतंत्र– कालूलाल श्रीमाली, विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर
13. बाल हृदय की गहराइयां– वसीली सुखोम्लीन्स्की, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली
14. बच्चों की कुछ समस्याएं– कालूलाल श्रीमाली, विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर
15. बच्चे असफल कैसे होते हैं– जॉन होल्ट, एकलव्य, भोपाल
16. बच्चे की भाषा और अध्यापक– कृष्ण कुमार, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
17. प्राग् विद्यालयी बालक की शिक्षा– सच्चिदानंद ढौंडियाल, विद्याभवन सोसायटी, उदयपुर
18. गरीब बच्चों की शिक्षा– बीट्रीस एवॉलास, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
19. अच्छा स्कूल– जॉन होल्ट– भारत ज्ञान विज्ञान समिति, नई दिल्ली
20. शिक्षाशास्त्रीय रचनाएं– लेव तोलस्तोय, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली
21. बचपन से पलायन – जॉन होल्ट, एकलव्य, भोपाल
22. बच्चों का जीवन– जॉर्ज डैनीसन, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
23. नील बाग के डेविड– एस आनंद लक्ष्मी, रोज़लिंड विल्सन, भारत ज्ञान विज्ञान समिति
24. मैं इस तरह नहीं पढ़ूंगी– रमेश दवे, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
25. ग्रहण शील मन– मरिया मोंटेसरी, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
26. गरीब बच्चों की शिक्षा– ब्रीट्रीस एवॉलास, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
27. क्रांति की बारह खड़ी– जोनावन कोज़ोल, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
28. शिक्षा के संदर्भ और विकल्प – रोहित धनकर, राजाराम भादू, आधार प्रकाशन
29. लोकतंत्र शिक्षा और विवेक शीलता– रोहित धनकर, आधार प्रकाशन, नई दिल्ली
30. अध्यापक– सिल्विया एश्टन– वॉरनर, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
31. शिक्षा की महागाथा– अंतोन, मकारेन्को, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
32. आदिवासी समाज और शिक्षा– राम शरण जोशी, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
33. संस्कृति शिक्षा और लोकतंत्र– नरिंदर सिंह, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
34. शिक्षा और जन आंदोलन– साधना सक्सेना, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
35. अध्यापकों की शिक्षा– जी.के. होडन फील्ड, टी.एम. स्टिनेट, आत्माराम एण्ड संस, नई दिल्ली
36. शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त– चांद किरण, विकेश प्रकाशन
37. शिक्षा में बदलाव का सवाल– अनिल सद्गोपाल, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
38. ज्ञान का निर्माण– विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर

होमवर्क

,d cPph Ldy ugh tkrh]
cdjh pjkrh gA
og ydfM;k cVkj&dj ?kj ykrh gA
fQj ek d lkFk Hkkr idkrh gA

,d cPph fdrkc ykn Ldy tkrh g]
'kke dk Fkdh&eknh ?kj vkrh gA
og Ldy e feyk gkeod]
ek&cki l djokrh gA

ck> fdrkc dk gk ;k ydMh dk]
nkuk cfPp;k <krh gA
yfdu ydMh l pYgk tyxk] rc iV Hkjxk]
ydMh yku okyh cPph] ;g tkurh gA
og ydMh dh mi;kfxrk igpkurh gA
fdrkc dh ckr] dc fdl dke vkrh g\
Ldy tku okyh cPph
fcuk le> i< tkrh gA

ydMh cVkjuk] cdjh pjkuk
vkj ek d lkFk Hkkr idkuk
tk lpep xgdk;s e vkr g]
gkeod ugh dg tkr gA
yfdu Ldy l fey ikBk d vH;kl]
Hky gh ?kjy dke u gk]
gkeod dgykr g\

,s lk dc gkxk]
tc fdrkc lpep d gkeod ¼xgdk;½ l tMxh]
vkj ydMh cVkju okyh cfPPk;k Hkh
,s lh fdrkc i<xh\

';ke cgknj ue